बहूरानी

रवि बाबू हमारे देश के महान साहित्य-कार थे। उनका यश देश में ही नहीं, विदेशों मे भी फैल रहा है। उनकी रचनाओं के अनुवाद विश्व की प्रमुख भाषाओं मे हो चुके हैं। वे अकेले भारतीय साहित्यकार हैं जिन्होंने नोबल पुरस्कार प्राप्त किया।

रवि बाबू के साहित्य में उनके उपन्यासों का विशेष स्थान है। उनका प्रत्येक उपन्यास उनकी निजी छाप लिए है। उनके उपन्यासों में काव्य जैसा माधुर्य है।

'बहूरानी' रवि बाबू के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'बहूरानीर हाट' का अनुवाद है। यह एक उग्र बाप और सरलहृदय बेटे के विचार-संघर्ष की रोमांचकारी कहानी है।
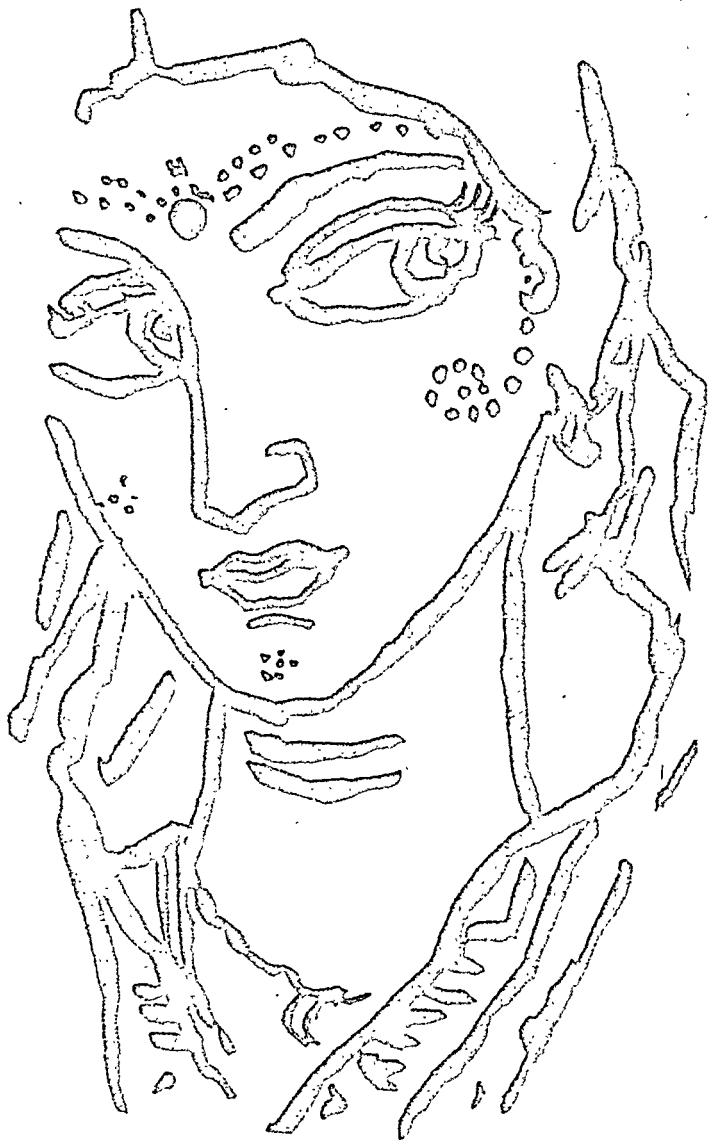
…संध्या होगी, तुम खिड़की में
आकर बैठोगे, पर मैं पास न हूंगी।
घर में दीप जलेगा,
तुम इस द्वार के निकट
आकर खड़े होगे,
पर मैं हंसती हुई तुम्हारा हाथ
पकड़कर ले नहीं जाऊंगी !
जब तुम यहां होगे तब मैं
कहां हूंगी !

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

हिन्द पॉकेट बुक्स

बहूरानी

(उपन्यास)

रवीन्द्र नाथ ठाकुर

बहूरानी

रात बहुत बीत चुकी है। गर्मी के दिन हैं। हवा बिलकुल बन्द है। पेड़ के पत्ते तक नहीं हिल रहे। यशोहर के युवराज, प्रतापादित्य के ज्येष्ठ पुत्र, उदयादित्य अपने शयनगृह की खिड़की में बैठे हैं। उनके समीप बैठी है उनकी पत्नी सुरमा।

सुरमा ने कहा, "प्रियतम, सब सहते रहो, धैर्य धारण करो, कभी न कभी सुख के दिन आएंगे ही।"

उदयादित्य ने कहा, "मैं तो और कोई सुख नहीं चाहता। मैं तो यही चाहता हूं कि मैं राजप्रासाद में जन्मा न होता, युवराज न होता, यशोहर-अधिपति की क्षुद्रतम, तुच्छतम प्रजा की भी प्रजा होता; उनका ज्येष्ठ पुत्र—उनके सिंहासन, उनके समस्त धन, मान और यश-गौरव का एकमात्र उत्तराधिकारी न होता! कौन-सी तपस्या करूं कि इस समस्त अतीत को उलटा जा सके!"

सुरमा ने अत्यन्त कातर होकर युवराज का दाहिना हाथ अपने दोनों हाथों के बीच दबा लिया और उनके मुंह की ओर देखते हुए धीरे-धीरे लम्बी सांस ली। युवराज की मनोभिलाषा पूरी करने के लिए वह अपने प्राण भी दे सकती है; लेकिन दुःख तो यही है कि प्राण देकर भी युवराज की इच्छा को पूरा नहीं किया जा सकता।

युवराज ने कहा, "सुरमा, राजा के घर जन्म लेने के कारण ही मैं सुखी न हो सका। राजा के घर शायद सभी उत्तराधिकारी होकर ही जन्म लेते हैं, सन्तान के रूप में कोई जन्म नहीं लेता। पिता बचपन से ही प्रतिक्षण मेरी परीक्षा करते आ रहे हैं कि मैं उनके उपार्जित यश-मान की रक्षा कर सकूंगा या नहीं, वंश का मुख उज्ज्वल कर सकूंगा या नहीं, राज्य के भारी उत्तरदायित्व को संभाल सकूंगा या नहीं। उन्होंने मेरे प्रत्येक कार्य को, प्रत्येक चेष्टा को परीक्षा की दृष्टि से देखा है, स्नेह की दृष्टि से नहीं। आत्मीयजन, मंत्री, राजसभासद, प्रजा—

सभी मेरे प्रत्येक कार्य और मेरी प्रत्येक बात को कसौटी पर कस-कस-कर मेरे भविष्य का हिसाब लगाते रहे हैं। सबके-सब सिर हिलाकर कहते हैं: उंहुं, इस संकटकाल में मैं राज्य की रक्षा नहीं कर सकता। मैं निर्बुद्धि हूं, मैं कुछ नहीं कर सकता। सब मेरी अवहेलना करने लगे हैं। पिताजी मुझसे घृणा करते हैं। यहां तक कि मुझसे उन्हें कोई आशा ही नहीं रह गई। मेरी खोज-खबर तक नहीं लेते।"

सुरमा के नेत्रों में जल भर आया। उसने कहा, "हाय, उनसे रहा कैसे जाता है!" उसे दुःख हुआ, उसे गुस्सा आया, "जो आपको निर्बुद्धि समझते हैं, वे स्वयं ही निर्बुद्धि हैं!"

उदयादित्य किंचित् हंस दिए। सुरमा का चिबुक पकड़कर उन्होंने रोष से आरक्त उसके मुखड़े को हिला दिया। दूसरे ही क्षण गम्भीर होकर उन्होंने कहा, "नहीं सुरमा, राजकाज चलाने की बुद्धि सचमुच मुझमें नहीं। यह सिद्ध हो चुका है। जब मैं सोलह वर्ष का था, शासन-प्रबन्ध की शिक्षा देने के लिए, महाराज ने हुसेनखाली परगने का भार मुझे सौंपा था। छः महीने में ही भारी गड़बड़ शुरू हो गई। राजस्व घटने लगा, प्रजा आशीर्वाद देने लगी। राज-कर्मचारी मेरे विरुद्ध महाराज से शिकायतें करने लगे। राजसभा के सभी सदस्यों की एक ही राय स्थापित हो गई कि युवराज चूंकि प्रजा के इतने प्रियपात्र हो गए हैं, इसलिए अब वे शासन किसी भी प्रकार नहीं कर सकते। उस दिन से महाराज ने मेरी ओर देखा तक नहीं। वे कहते हैं, 'यह कुलांगार ठीक रायगढ़ के बूढ़े बसन्तराय के समान होगा, सितार बजाकर नाचता फिरेगा और सारे राज्य को चौपट कर देगा।'"

सुरमा ने फिर कहा, "प्रियतम, धैर्य धारण करो। आखिर तो वे आपके पिता हैं। इस समय राज्य-उपार्जन एवं राज्य-वृद्धि की एकमात्र दुराशा ने उनके हृदय पर अधिकार कर रखा है, वहां स्नेह के लिए कोई स्थान नहीं रह गया है। जैसे ही उनकी अभिलाषा पूरी होगी, उनके स्नेह के साम्राज्य में भी अवश्य अभिवृद्धि होगी।"

युवराज ने कहा, "सुरमा, तुम्हारी बुद्धि तीव्र और दूरदर्शी है, किन्तु इस बार तुम गलत समझ बैठी हो। एक तो अभिलाषा का कोई अन्त नहीं; दूसरे, पिताजी के राज्य की सीमा जितनी ही बढ़ती जाएगी,

उगे खोने का उनका भय भी उतना ही बढ़ता जाएगा, और राजकाज का बोझ जितना ही बढ़ता जाएगा, वे मुझे उसके उतना ही अधिक अनुपयुक्त समझते जाएंगे।"

सुरमा ने गलत नहीं समझा, केवल गलत विश्वास किया; और विश्वास बुद्धि को लाँघ जाता है। वह सम्पूर्ण मन से चाहती है कि ऐसा ही हो और इसी विश्वास से प्रेरित होकर उसने यह बात कही।

उदयादित्य कहते गए, "चारों ओर बड़ी कृपादृष्टि और बड़ी अवहेलना सहन न कर पाता तो मैं बीच-बीच में भागकर रायगढ़ दादा साहब के पास चला जाता था। पिता तो कभी खोज-खबर लेते नहीं थे। ओह, वहां जाते ही कैसा परिवर्तन हो जाता था! वहां पेड़-पौधे और बाग-बगीचे देखने को मिलते थे, ग्रामीणों के झोंपड़े में जा सकता था, दिन-रात राजवेश धारण किए नहीं रहना पड़ता था। इसके अतिरिक्त, जहां दादा साहब रहते हैं वहां विषाद, चिन्ता और कठोर गाम्भीर्य फटकने नहीं पाता। गा-बजाकर, आमोद-प्रमोद कर चारों दिशाओं को भरा-पूरा किए रहते हैं। उनके चारों ओर सदैव उल्लास, शान्ति और सद्भावना निवास करते हैं। वहां जाकर मैं भूल जाता हूं कि मैं यशोहर का युवराज हूं। कितनी सुखद भूल होती है वह! इसी तरह जब मेरी उम्र अट्ठारह वर्ष की हुई, और रायगढ़ में जब एक दिन वासन्ती हवा चल रही थी, एक सघन निकुंज में मैंने रुक्मिणी को देखा।..."

सुरमा बोल उठी, "यह बात तो मैं अनेक बार सुन चुकी हूं।"

उदयादित्य—और एक बार सुन लो। रह-रहकर यह अकेली एक कथा प्राणों को कचोटती रहती है। यदि कहकर इसे बाहर न निकाल दूं तो प्राण बचेंगे कैसे! फिर यह बात तुम्हें बताते हुए अब भी लज्जा और कष्ट का अनुभव होता है, इसीसे बार-बार कहा करता हूं। जिस दिन कहने में लज्जा और कष्ट न होगा, उस दिन समझूंगा कि मेरा प्रायश्चित्त पूरा हुआ, फिर उसकी चर्चा कभी नहीं करूंगा।

सुरमा—प्रायश्चित्त किस बात का, प्रियतम? यदि तुमने पाप भी किया हो तो वह पाप का दोष है, तुम्हारा दोष नहीं। क्या मैं तुम्हें जानती नहीं? अन्तर्यामी क्या तुम्हारे मन को देख नहीं पाते?

सभी मेरे प्रत्येक कार्य और मेरी प्रत्येक बात को कसौटी पर कस-कस-कर मेरे भविष्य का हिसाब लगाते रहे हैं। सबके-सब सिर हिलाकर कहते हैं: उंहुं, इस संकटकाल में मैं राज्य की रक्षा नहीं कर सकता। मैं निर्बुद्धि हूं, मैं कुछ नहीं कर सकता। सब मेरी अवहेलना करने लगे हैं। पिताजी मुझसे घृणा करते हैं। यहां तक कि मुझसे उन्हें कोई आशा ही नहीं रह गई। मेरी खोज-खबर तक नहीं लेते।"

सुरमा के नेत्रों में जल भर आया। उसने कहा, "हाय, उनसे रहा कैसे जाता है!" उसे दुःख हुआ, उसे गुस्सा आया, "जो आपको निर्बुद्धि समझते हैं, वे स्वयं ही निर्बुद्धि हैं!"

उदयादित्य किंचित् हंस दिए। सुरमा का चिबुक पकड़कर उन्होंने रोष से आरक्त उसके मुखड़े को हिला दिया। दूसरे ही क्षण गम्भीर होकर उन्होंने कहा, "नहीं सुरमा, राजकाज चलाने की बुद्धि सचमुच मुझमें नहीं। यह सिद्ध हो चुका है। जब मैं सोलह वर्ष का था, शासन-प्रबन्ध की शिक्षा देने के लिए, महाराज ने हुसेनखाली परगने का भार मुझे सौंपा था। छः महीने में ही भारी गड़बड़ शुरू हो गई। राजस्व घटने लगा, प्रजा आशीर्वाद देने लगी। राज-कर्मचारी मेरे विरुद्ध महाराज से शिकायतें करने लगे। राजसभा के सभी सदस्यों की एक ही राय स्थापित हो गई कि युवराज चूंकि प्रजा के इतने प्रियपात्र हो गए हैं, इसलिए अब वे शासन किसी भी प्रकार नहीं कर सकते। उस दिन से महाराज ने मेरी ओर देखा तक नहीं। वे कहते हैं, 'यह कुलांगार ठीक रायगढ़ के बूढ़े वसन्तराय के समान होगा, सितार बजाकर नाचता फिरेगा और सारे राज्य को चौपट कर देगा।'"

सुरमा ने फिर कहा, "प्रियतम, धैर्य धारण करो। आखिर तो वे आपके पिता हैं। इस समय राज्य-उपार्जन एवं राज्य-वृद्धि की एकमात्र दुराशा ने उनके हृदय पर अधिकार कर रखा है, वहां स्नेह के लिए कोई स्थान नहीं रह गया है। जैसे ही उनकी अभिलाषा पूरी होगी, उनके स्नेह के साम्राज्य में भी अवश्य अभिवृद्धि होगी।"

युवराज ने कहा, "सुरमा, तुम्हारी बुद्धि तीव्र और दूरदर्शी है, किन्तु इस बार तुम गलत समझ बैठी हो। एक तो अभिलाषा का कोई अन्त नहीं; दूसरे, पिताजी के राज्य की सीमा जितनी ही बढ़ती जाएगी,

उगे खोने का उनका भय भी उतना ही बढ़ता जाएगा; और राजकाज का बोझ जितना ही बढ़ता जाएगा, वे मुझे उसके उतना ही अधिक अनुपयुक्त समझते जाएंगे।"

सुरमा ने गलत नहीं समझा, केवल गलत विश्वास किया; और *विश्वास बुद्धि को साथ जाता है। वह सम्पूर्ण मन से चाहती है कि ऐसा* ही हो और इसी विश्वास से प्रेरित होकर उसने यह बात कही।

उदयादित्य कहते गए, "चारों ओर कहीं कृपादृष्टि और कहीं अवहेलना सहन न कर पाता तो मैं बीच-बीच में भागकर रायगढ़ दादा साहब के पास चला जाता था। पिता तो कभी खोज-खबर लेते नहीं थे। ओह, वहा जाते ही कैसा परिवर्तन हो जाता था! वहां पेड़-पौधे और बाग-बगीचे देखने को मिलते थे, ग्रामीणों के झोपड़ों में जा सकता था, दिन-रात राजवेश धारण किए नहीं रहना पड़ता था। इसके अतिरिक्त, जहां दादा साहब रहते हैं वहां विषाद, चिन्ता और कठोर गाम्भीर्य फटकने नहीं पाता। गान-बजाना, आमोद-प्रमोद कर चारों दिशाओं को भरा-पूरा किए रहते हैं। उनके चारों ओर सदैव उल्लास, शान्ति और सद्भावना निवास करते हैं। वहां जाकर मैं भूल जाता हूं कि मैं यशोहर का युवराज हूं। कितनी सुखद भूल होती है वह! इसी तरह जब मेरी उम्र अट्ठारह वर्ष की हुई और रायगढ़ में जब एक दिन वासन्ती हवा चल रही थी, एक सघन निकुंज में मैंने रुक्मिणी को देखा।...."

सुरमा बोल उठी, "यह बात तो मैं अनेक बार सुन चुकी हूं।"

उदयादित्य—और एक बार सुन लो। रह-रहकर यह अकेली एक कथा प्राणों को कचोटती रहती है। यदि कहकर इसे बाहर न निकाल दूं तो प्राण बचेंगे कैसे! फिर यह बात तुम्हें बताते हुए अब भी लज्जा और कष्ट का अनुभव होता है, इसीसे बार-बार यहां करता हूं। जिस दिन कहने में लज्जा और कष्ट न होगा, उस दिन समझूंगा कि मेरा प्रायश्चित्त पूरा हुआ, फिर उसकी चर्चा कभी नहीं करूंगा।

सुरमा—प्रायश्चित्त किस बात का, प्रियतम? यदि तुमने पाप भी किया हो तो वह पाप का दोष है, तुम्हारा दोष नहीं। क्या मैं तुम्हें जानती नहीं? अन्तर्यामी क्या तुम्हारे मन को देख नहीं पाते?

उदयादित्य ने सुरमा की बात अनसुनी करके कहा, "रुक्मिणी मुझसे उम्र में तीन वर्ष बड़ी थी। वह अकेली और विधवा थी। दादा साहब के अनुग्रह के कारण वह रायगढ़ में रहने पाई थी। नहीं जानता कि किस कौशल से उसने मुझे अपनी ओर पहले-पहल आकर्षित किया। उस समय मेरे मन में मध्याह्न की किरण जल रही थी। इतना प्रखर आलोक था कि मैं कुछ भी ठीक से देख नहीं पाता था—चारों ओर, सृष्टि ज्योतिर्मय वाष्प से आच्छादित प्रतीत होती थी। शरीर का समस्त रक्त मानो सिर में चढ़ गया था; कुछ भी विचित्र और असम्भव नहीं लगता था; पथ-विपथ, दिशा-अदिशा सब कुछ एकाकार हो गया था। उससे पूर्व कभी मेरी ऐसी दशा नहीं हुई, उसके बाद भी मुझे कभी ऐसा नहीं लगा। जगदीश्वर ही जानें, उन्होंने अपने किस उद्देश्य की पूर्ति के हेतु इस क्षुद्र, दुर्बल हृदय के विरुद्ध एक दिन के लिए समस्त जगत् को इस प्रकार उत्तेजित कर दिया कि सचराचर सृष्टि एकतन्त्र होकर इस हृदय को क्षण में विपथ की ओर ले गई। अधिक नहीं, केवल क्षण-भर के लिए समस्त बहिर्जगत् का एक क्षण स्थायी और दारुण आघात लगा और उसी क्षण में इस हृदय की जड़ उखड़ गई—विद्युत्-वेग से वह धूल में जा गिरा। उसके बाद जब वह उठा तो धूल-धूसरित और म्लान था—वह धूल फिर पुछ नहीं सकी, उस मलिनता का चिह्न फिर नहीं मिटा। मैंने ऐसा कौन-सा पाप किया था कि विधाता ने एक क्षण में मेरे जीवन की समस्त उज्ज्वलता को काला कर दिया! मेरे हृदय के पुष्पोद्यान में खिल रहे मालती और जुही के विहंसते मुखड़े भी उस लज्जा से काले पड़ गए!"

कहते-कहते उदयादित्य का गोरा चेहरा आरक्त हो उठा, आंखें फैल गईं, सिर से लेकर पांवों तक बिजली-सी कौंध गई।

सुरमा ने हर्ष, गर्व और कष्ट से सिहरकर कहा, "अब इसे रहने दो; तुम्हें मेरे सिर की सौगन्ध!"

लेकिन उदयादित्य कहते ही गए, "धीरे-धीरे रक्त की उष्णता शांत हुई और मैं सब वस्तुओं को उनके वास्तविक रूप में देखने लगा। जब विश्व अपने प्रकृत कार्यक्षेत्र के रूप में दिखाई देने लगा तो मन की न जाने कैसी अवस्था हो गई थी! तब पहली बार पता चला कि कहां

से कहा ग्रा गिरा हूं ! हजारों-लाखों कोस नीचे पाताल के गहन गह्वर मे, ग्रन्धतम रजनी के बीच पलक झपकते ही ग्रा गिरा हू ! दादा साहब स्नेहपूर्वक बुला ले गए; हाय, उनको मैं ग्रपना मुह दिखा ही कैसे सका ! लेकिन उसी समय मुझे रायगढ़ छोड़ देना पड़ा। दादा साहब मुझे देखे बिना रह नही सकते थे। उन्होंने मुझे पुन. बुला भेजा। परन्तु मेरे मन मे ऐसा डर समा गया था कि जाते नहीं बना। तब वे स्वयं मुझे और वह्नि विभा को देखने के लिए ग्राने लगे। कोई ग्रभिमान नही, कोई उलाहना नही। इतना भी नही पूछते कि मैं क्यों नहीं जाता। हमसे मिलते, ग्रामोद-प्रमोद करते और लौट जाते।"

उदयादित्य ने किंचित् मुस्कराकर ग्रतिशय मृदुल कोमल प्रेम से ग्रपने बड़े-बड़े तरल नेत्रों से सुरमा के मुह की ओर देखा। सुरमा समझ गई कि इस बार कौन-सी बात छिड़नेवाली है। उसका मुह ग्रवनत हो गया, वह कुछ चचल भी हो उठी। युवराज ने दोनों हाथो से सुरमा के कपोलों को पकडकर उसके ग्रवनत ग्रानन को ऊपर उठाया। धीरे से उसके मुह को ग्रपने कन्धे पर रख लिया। बायें हाथ से उसके कटिप्रदेश को पकडे हुए, गम्भीर प्रशान्त प्रेम से उसके कपोल को चूमकर उन्होंने कहा, "उसके बाद क्या हुग्रा, बताग्रो तो सुरमा ? तुम्हारा यह बुद्धि से दीप्त, स्नेह-प्रेम से कोमल, हास्योज्ज्वल, प्रशात भाव से विमल मुखडा कहा से उदित हुग्रा ? मेरे उस घनान्धकार के दूर होने की क्या कोई ग्राशा थी ? तुम मेरी उषा हो, मेरे प्रभात की किरण, मेरी ग्राशा ! किस माया-मत्र से तुमने ग्रन्धकार को मिटा दिया ?"

युवराज बार-बार सुरमा के मुह को चूमने लगे। वह कुछ न बोली, ग्रानन्दातिरेक से उसकी ग्राखें भर ग्राई।

युवराज ने कहा, "इतने दिनो के बाद मुझे यथार्थ ग्राश्रय मिला। तुम्हींसे प्रथम बार सुना कि मैं निर्बुद्धि नही—उसपर विश्वास किया और स्वय को वैसा ही समझने लगा। तुम्हींसे यह सीखा कि बुद्धि ग्रंधेरी गली के समान टेढ़ी-मेढी और ऊंची-नीची नहीं, राजपथ के समान सरल, समतल और प्रशान्त होती है। पहले मैं ग्रपने-ग्रापसे घृणा करता था, स्वय ग्रपनी ग्रवहेलना करता था। कोई काम करने का साहस नहीं कर पाता था। मन यदि कहता कि वह ठीक है तो

आत्मसंशयी संस्कार कह उठता था कि शायद यह ठीक न हो। जो जैसा व्यवहार करता था उसे सह लिया करता था। इतने दिनों के बाद समझ सका कि मैं भी कुछ हूं। इतने दिनों तक मैं अदृश्य था, तुमने मुझे बाहर निकाला। सुरमा, तुमने मेरा आविष्कार किया। अब मेरा मन जिसे अच्छा कहता है, उचित समझता है, मैं उसे उसी क्षण करना चाहता हूं। तुम्हारे ऊपर मेरा इतना विश्वास है कि जब तुम मुझपर विश्वास करती हो तो मैं भी अपने-आपपर निर्भय होकर विश्वास कर सकता हूं। इस सुकोमल शरीर में इतना बल कहां छिपा था, जिससे तुमने मुझे भी इतना बलवान बना दिया ?"

पूर्ण समर्पण के भाव से सुरमा पति के वक्षस्थल से लिपट गई। असीम उत्सर्गमयी दृष्टि से वह पति की ओर देखती रही; मानो उसके नेत्र कह रहे हों, 'मेरा और कोई नहीं, केवल तुम्हीं मेरे सर्वस्व हो !'

बचपन से उदयादित्य आत्मीयजनों की उपेक्षा सहते आए हैं; इसीलिए बीच-बीच में किसी-किसी दिन निस्तब्ध गहन रात्रि में सुरमा के समीप बैठकर सौ बार कही हुई उसी पुरानी जीवन-कहानी का खण्ड-खण्ड कर आलोचना करना उन्हें बड़ा अच्छा लगता है।

उदयादित्य ने कहा, "इस तरह और कितने दिन चलेगा, सुरमा ! इधर राजसभा के सभासदगण एक प्रकार की दयाभरी दृष्टि से मेरी ओर देखते हैं, उधर अन्तःपुर में मां तुम्हें अपमानित करती रहती हैं। यहां तक कि दास-दासी भी तुम्हारा सम्मान नहीं करते। मैं चुपचाप सहता रहता हूं। तेजस्विनी होकर भी तुम चुपचाप सह लिया करती हो। मेरे कारण तुम्हें केवल अपमान और कष्ट ही सहना पड़ रहा है; इससे तो यही अच्छा था कि हमारा विवाह ही न होता !"

सुरमा बोली, "यह क्या कहते हो, नाथ ! ऐसे ही समय तो तुम्हें सुरमा की आवश्यकता है। सुख के समय तो सुरमा विलास की वस्तु और क्रीड़ा की कठपुतली होती। समस्त दुःखों का अतिक्रमण कर मेरे मन में यही सुख जाग रहा है कि मैं तुम्हारे काम आ रही हूं; तुम्हारे लिए दुःख सहने में जो अतुल आनन्द प्राप्त होता है, मैं उसीका उपभोग कर रही हूं। दुःख केवल इस बात का है कि तुम्हारे समस्त कष्टों को मैं क्यों उठा नहीं पाती !"

युवराज कुछ देर चुप रहे। फिर बोले, "मुझे अपने लिए तो उतनी चिन्ता नहीं। सब कुछ सहनीय हो गया है। किन्तु सोच यही है कि मेरे लिए तुम्हें अपमान सहना पड़ता है; वह तुम क्यों सहो? एक सच्ची नारी की भांति दुःख में तुमने मुझे सान्त्वना दी है, श्रान्त होने पर विश्राम दिया है; लेकिन पति होने के नाते मैं तुम्हें अपमानित और लज्जित होने से बचा नहीं सका। तुम्हारे पिता श्रीपुर-राज मेरे पिता को अपना अधिपति नहीं मानते, वे यशोहर की अधीनता स्वीकार नहीं करते, इसलिए मेरे पिता तुम्हारा निरादर कर अपने बड़प्पन को बनाए रखना चाहते हैं—बाप का बदला बेटी से चुकाया जा रहा है। वे समझते हैं कि तुम्हें पुत्रवधू बनाया, यही यथेष्ट हुआ, तुमपर बड़ा अनुग्रह किया। अब अधिक सहा नहीं जाता। मन में आता है कि सब कुछ छोड़-छाड़कर तुम्हें लेकर चला जाऊं। अब तक सम्भवतः चला भी जाता, केवल तुमने पकड़ रखा है।"

रात बहुत बीत गई थी। प्राकार-तोरण पर स्थित प्रहरियों की पदचाप दूर सुनाई देने लगी। सारा संसार सोया हुआ है। नगर के सारे दीपक बुझ गए हैं, घर-द्वार बन्द हो चुके हैं। उदयादित्य के शयन-कक्ष के द्वार बन्द थे। सहसा बाहर से कोई द्वार खटखटाने लगा।

घबराकर युवराज ने द्वार खोल दिए, "कौन, बहन विभा? क्या बात है? इतनी रात में यहां कैसे?"

विभा ने कहा, "अब तक शायद सर्वनाश हो गया होगा!" सुरमा और उदयादित्य ने एकसाथ पूछा, "क्यों, क्या हुआ?" विभा ने भय-विकम्पित स्वर में धीरे से कुछ कहा। कहते-कहते उससे रहा न गया, वह रो उठी, "भैया, अब क्या होगा?" उदयादित्य ने कहा, "मैं अभी जाता हूं।" विभा बोल उठी, "नहीं, नहीं, मत जाओ!" उदयादित्य ने कहा, "क्यों, विभा?" "पिताजी को अगर मालूम हो गया तो?" सुरमा ने कहा, "छि विभा! यह समय यह सब सोचने का है?"

उदयादित्य वस्त्रादि पहन, कमर में तलवार बांध जाने की तैयारी करने लगा। विभा ने उनका हाथ पकड़कर कहा, "भैया, तुम मत जाओ, किसीको भेज दो, मुझे डर लग रहा है!"

उदयादित्य ने कहा, "विभा, इस समय रोको मत। अब समय नहीं

है।" यह कहकर वे उसी क्षण चल दिए।

विभा सुरमा का हाथ पकड़कर बोल उठी, "अब क्या होगा, भाभी! पिताजी को यदि मालूम हो गया? उन्होंने यदि भैया को दण्ड दिया?"

सुरमा ने एक दीर्घ निश्वास लेकर कहा, "मेरा तो विश्वास है कि संसार में जिसका कोई सहायक नहीं होता, नारायण स्वयं उसकी सहायता करते हैं। हे प्रभु, ऐसा करना जिससे तुम्हारे नाम पर कलंक न लगे; मेरे इस विश्वास को तोड़ना मत!"

२

मंत्री ने कहा, "महाराज, यह काम क्या अच्छा होगा?"

प्रतापादित्य ने पूछा, "कौन-सा काम?"

मंत्री ने उत्तर दिया, "कल आपने जो आदेश दिया था।"

प्रतापादित्य ने विरक्तिपूर्वक कहा, "कल क्या आदेश दिया था?"

मंत्री ने कहा, "अपने चाचा के सम्बन्ध में।"

प्रतापादित्य ने और भी विरक्त होकर कहा, "चाचा के सम्बन्ध में क्या?"

मंत्री बोले, "महाराज़ ने आदेश दिया था कि वसन्तराय जब यशोहर आते हुए मार्ग में शिमुलतली की सराय में ठहरे हों, तब···"

प्रतापादित्य ने भौंहें सिकोड़कर कहा, "तब क्या? हमेशा पूरी बात कहा करो!"

मंत्री—तब दो पठान जाकर···

प्रतापादित्य—हां, फिर?

मंत्री—उन्हें मार डालें।

प्रतापादित्य ने नाराज़ होकर कहा, "मंत्री, क्या तुम सहसा बच्चे हो गए हो? एक बात पूछने के लिए दस प्रश्न करने पड़ते हैं, क्यों? असल बात मुंह पर लाते संकोच तो नहीं हो रहा है? राजकाज में मन लगाने की तुम्हारी उमर बीत गई और शायद परलोक की चिन्ता करने के दिन आ गए! आश्चर्य है, अब तक तुमने कार्यभार से मुक्त होने के लिए प्रार्थना क्यों नहीं की!"

मंत्री ने कहा, "महाराज, मेरी बात को अच्छी तरह समझ नहीं

सके हैं शायद !"

प्रतापादित्य बोले, "बहुत अच्छी तरह समझ गया हूं। लेकिन एक बात पूछना चाहता हू, जिस काम को मै कर सकता हूं, उसे तुम जबान पर भी नही ला सकते, क्यो ? तुम्हें सोचना चाहिए था कि मै जिस काम को करने जा रहा हू उसे करने का कोई न कोई गम्भीर कारण अवश्य होगा, मैंने उसके सम्बन्ध मे धर्म-अधर्म, उचित-अनुचित सब कुछ अच्छी तरह सोच लिया है।"

मत्री—जी हा, महाराज ! मै···

प्रतापादित्य—चुप रहो, पहले मेरी पूरी बात सुन लो ! जब मैं इस काम को—अपने सगे चाचा की हत्या करने को—उद्यत हुआ हू तो इस सम्बन्ध मे निस्सन्देह तुम्हारी अपेक्षा मैंने अधिक ही सोचा है। इस काम मे कोई अधर्म नही है। भली प्रकार समझ लो, मेरा यही व्रत है कि जिन म्लेच्छो ने हमारे देश मे आकर अनाचार आरम्भ किया है, जिनके अत्याचारो मे हमारे देश से सनातन आर्यधर्म लुप्त होता जा रहा है, क्षत्रिय मुगलो को अपनी कन्याए देने लगे है, हिन्दू आचारभ्रष्ट हो रहे हैं, उन म्लेच्छो को मैं यहा से निकाल बाहर करूगा, अपने आर्यधर्म को राहु-ग्रास से मुक्त करूगा। इस व्रत की पूर्ति करने के लिए बहुत बडे बल की आवश्यकता है। मै चाहता हू कि इस काम के लिए समस्त बगदेश के राजा मेरी अधीनता मे एक हो जाए। जो यवनो के मित्र हैं उनका विनाश किए बिना इस उद्देश्य की पूर्ति नही हो सकती। चाचा बसन्तराय मेरे पूजनीय है, लेकिन सच कहने मे कोई पाप नही, वे हमारे वश के कलक है। उन्होंने स्वय को म्लेच्छों का दास मान लिया है। ऐसे लोगो से प्रतापादित्य का कोई सम्पर्क नही। सड जाने पर अपनी ही भुजा को काटकर फेंक देना पडता है। मेरी इच्छा है कि रायवश की सडाध, बगदेश की सडाध उस बसन्त-राय को काटकर फेंक दिया जाए। और ऐसा करके रायवश तथा बगदेश की रक्षा की जाए।

मत्री ने कहा, "इस सम्बन्ध मे महाराज के मत से मेरा मत कभी भी भिन्न नही था।"

प्रतापादित्य बोले, "था, अवश्य था ! और अभी भी है ! देखो

मंत्री, जब तक हमारे मत के साथ तुम्हारा मत मिल नहीं जाता, तुम उसे प्रकट करते रहो। यदि इतना साहस नहीं है, तो फिर यह पद तुम्हारे लिए नहीं। तुम सोचते हो कि अपने चाचा की हत्या करना सभी परिस्थितियों में पाप है। 'नहीं' मत कहो। मैं जानता हूं तुम्हारे मन में ठीक यही बात है। लेकिन इसका भी उत्तर है। पिता की आज्ञा पाकर भृगु ने अपनी माता का वध किया। तो क्या धर्म के अनुरोध पर मैं अपने चाचा की हत्या नहीं कर सकता ?"

मंत्री ने कहा, "मैं कह रहा था कि दिल्लीश्वर इस सम्वाद को सुनकर निश्चय ही रुष्ट होंगे।"

प्रतापादित्य जल-भुन उठे, "हां, हां, रुष्ट होंगे ! दिल्लीश्वर मेरे ईश्वर तो नहीं हैं। उनके रोष से थर-थर कांप उठनेवालों की कमी नहीं है। मानसिंह है, बीरबल है, हमारे वसन्तराय हैं, और देख रहा हूं कि तुम भी हो; लेकिन सबको तुम अपने जैसा मत समझा करो !"

मंत्री ने हंसकर कहा, "जी महाराज ! थोथे रोष से तो मैं भी नहीं डरता, किन्तु उसके साथ यदि ढाल-तलवार हो तब तो सोचना ही पड़ता है। दिल्लीश्वर के रोष का अर्थ है पचास हजार सैनिक !"

प्रतापादित्य इस बात का समुचित उत्तर न दे पाने के कारण बोले, "देखो मंत्री, दिल्लीश्वर का डर दिखाकर मुझे किसी कार्य से रोकने की चेष्टा मत करो, इससे मैं बहुत अपमानित अनुभव करता हूं।"

मंत्री ने कहा, "प्रजा को मालूम होगा तो वह क्या कहेगी ?"

प्रतापादित्य—पर मालूम होगा ही क्यों ?

मंत्री—ऐसे काम अधिक समय तक छिपे नहीं रहते। इस संवाद के फैलते ही समस्त बंगदेश आपका विरोधी हो जाएगा। फिर तो जिस उद्देश्य से आप इस काम को करना चाहते हैं वही विनष्ट हो जाएगा। आपको नाना प्रकार की बाधाएं सहनी पड़ेंगी।

प्रतापादित्य—देखो मंत्री, तुमसे एक बार फिर कहता हूं कि मैं जो कुछ करता हूं, खूब सोच-विचारकर ही किया करता हूं। इसलिए मेरे किसी काम में लग जाने पर व्यर्थ का भय दिखलाकर मुझे रोकने का प्रयत्न मत किया करो ! पग-पग पर बाधा देने के लिए अपने पांव की जंजीर बनाकर मैंने तुम्हें नहीं रखा है !

मंत्री चुप हो गए। उनके लिए राजा के दो आदेश थे। एक तो यह कि जब तक मतभेद हो उसे प्रकट करें; दूसरे यह कि विरुद्ध मत प्रकट करके राजा को किसी काम में रोकने का प्रयत्न न करें। मंत्री आज तक इन दोनों आदेशों में अच्छी तरह सामंजस्य नहीं कर सके हैं।

मंत्री कुछ समय के बाद पुनः बोले, "महाराज, दिल्लीश्वर···"

प्रतापादित्य ने जलकर कहा, "फिर दिल्लीश्वर! मंत्री, तुम दिन-भर में जितनी बार दिल्लीश्वर का नाम लेते हो, उतनी बार यदि जगदीश्वर का नाम लेते तो अपना परलोक सुधार लेते। जब तक मेरा यह काम पूरा नहीं हो जाता, तुम दिल्लीश्वर का नाम जबान पर न लाना। आज काम तो जब इस काम के पूरा होने का समाचार मुझे मिल जाए तब तुम मेरे कान के पास दिल्लीश्वर का नाम जपकर अपने मन की साध पूरी कर लेना।"

मंत्री फिर चुप हो गए। दिल्लीश्वर की बात बन्द करके बोले, "महाराज, युवराज उदयादित्य···"

राजा ने कहा, 'दिल्लीश्वर गए प्रजा गई, अब अन्त में उस स्त्रैण बालक की बात छेड़कर डराना चाहते हो?"

मंत्री बोले, "नहीं महाराज, आप मुझे एकदम गलत समझ रहे हैं। आपके काम में बाधा देने की मेरी मन्शा कतई नहीं है।"

प्रतापादित्य ने शान्त होकर कहा, "तो क्या कह रहे थे? कहो!"

मंत्री बोले, "कल रात राजकुमार सहसा घोड़े पर सवार होकर अकेले चले गए हैं, अभी तक लौटे नहीं।"

प्रतापादित्य ने झल्लाकर पूछा, "किस ओर गए हैं?"

मंत्री ने उत्तर दिया, "पूर्व दिशा की ओर।'

प्रतापादित्य ने दांत पीसकर कहा, "कब गया था?"

मंत्री—कल लगभग आधी रात के समय।

प्रतापादित्य ने कहा, "क्या श्रीपुर के ज़मींदार की लड़की यहीं है?

मंत्री—जी हां, महाराज!

प्रतापादित्य—अब वह अपने बाप के घर ही रहे तो अच्छा है।

मंत्री ने कोई उत्तर नहीं दिया।

प्रतापादित्य बोले, "उदयादित्य कभी भी राजा की भांति नहीं

था। बचपन से प्रजा के ही साथ उसका मेलजोल रहा है। मेरी सन्तान ऐसी होगी, इसे कौन जानता था ! किन्तु कहा जो है, 'नराणां मातुल-क्रमः।' शायद वह अपने मातामह को पड़ा है। ऊपर से मैंने उसका विवाह श्रीपुर घराने में कर दिया, तब से लड़के का अधःपतन ही हो गया। ईश्वर करें, मेरा कनिष्ठ पुत्र योग्य हो, जिससे मुझे अन्त समय में, यदि अपने आरम्भ किए हुए कार्य को पूरा न कर सकूं तो, पछताना न पड़े। तो क्या वह अभी तक लौटकर नहीं आया ?"

मंत्री—नहीं महाराज !

प्रतापादित्य ने भूमि पर पांव पटककर कहा, "कोई प्रहरी उसके साथ क्यों नहीं गया ?"

"एक जाने को तैयार था, परन्तु उन्होंने उसे रोक दिया।"

"चुपचाप दूर-दूर रहकर क्यों नहीं गया ?"

मंत्री—उन्हें किसी प्रकार का सन्देह नहीं हुआ।

प्रतापादित्य—सन्देह नहीं हुआ ! मंत्री, क्या तुम मुझे यह समझाना चाहते हो कि उन लोगों ने कोई बहुत अच्छा काम किया है ! मंत्री, तुम मुझे इस प्रकार व्यर्थ समझाने की कोशिश मत किया करो। प्रहरियों ने अपने कार्य में अत्यधिक असावधानी की है। उस समय द्वार पर कौन थे ? सभीको बुलाओ। इस घटना के कारण यदि मेरी कोई इच्छा विफल हुई तो मैं सबका नाश कर डालूंगा। मेरे पास तुम यह प्रमाणित करने के लिए आए हो कि इस कार्य के लिए कोई उत्तरदायी नहीं ! तो फिर इसके लिए तुम्हीं उत्तरदायी हो !

प्रतापादित्य ने प्रहरियों को बुला भेजा। कुछ देर गम्भीर रहने के बाद उन्होंने पूछा, "हां, दिल्लीश्वर के बारे में तुम क्या कह रहे थे ?"

मंत्री—सुना है आपके विरुद्ध दिल्लीश्वर से शिकायत की गई है।

प्रतापादित्य—किसने की है ? युवराज उदयादित्य ने तो नहीं ?

मंत्री—जी नहीं महाराज, ऐसी बात न कहिए। शिकायत किसने की, इसका पता अभी तक नहीं चला।

प्रतापादित्य—जिसने भी की हो, तुम्हें उसकी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। मैं स्वयं ही दिल्लीश्वर के बारे में सोच सकता हूं और उन्हें दण्ड देने का उद्योग कर रहा हूं। वे पठान अभी तक नहीं लौटे ?

उदयादित्य अभी तक नही आया ? प्रहरियों को शीघ्र बुलाओ।

३

निर्जन पथ पर विद्युत्-वेग से युवराज घोड़ा दौड़ाए जा रहे हैं। अंधेरी रात है, किन्तु मार्ग लम्बा, सीधा और प्रशस्त होने के कारण किसी प्रकार के भय की आशंका नही है। थके हुए घोड़े के नथुने तेज़ साँस के कारण फूले हुए हैं, मुह से फेन गिर रहा है, पिछले दोनो पावों के लगातार रगड़े जाने के कारण फेन जम गया है, पसलियो से एक प्रकार का शब्द सुनाई दे रहा है, सारा शरीर पसीने मे सराबोर हो रहा है। गरमी तेज़ है, हवा का नाम नही, और अभी काफी रास्ता पार करने को पड़ा है। बहुत-सा पानी-भरा और चटियल मैदान पार करके युवराज अन्त मे एक कच्चे रास्ते पर आ पहुचे। घोड़े को उन्होने फिर तेज़ी से दौड़ाया। एक बार घोड़े की गर्दन थपथपाकर उसे उत्साहित करते हुए पुकारा, "सुग्रीव !" घोड़े ने एक बार कान खड़े कर बड़ी-बड़ी आखो की वकिम दृष्टि से स्वामी की ओर देखा, एक बार गर्दन टेढ़ी करके हिनहिनाया और मुह से झटका मारकर लगाम ढीली की और गरदन नीची करके तेज़ी से भाग चला।

रात के तीसरे पहर, जब बस्ती के समीप सियार 'हुआ-हुआ' कर प्रहर का पता दे गए, तो युवराज शिमुलतली की सराय के द्वार पर आ खड़े हुए। उनका घोड़ा उसी समय निर्जीव होकर ज़मीन पर गिर पड़ा। राजकुमार ने झुककर उसकी पीठ थपथपाई, उसका मुह उठाकर बार-बार पुकारा, "सुग्रीव ! सुग्रीव !" लेकिन वह फिर भी नही हिला। एक लम्बी सास लेकर युवराज सराय के द्वार पर गए और दस्तक दी। बार-बार खटखटाए जाने पर सराय के रखवाले ने, द्वार न खोल, खिड़की मे से ही पूछा, "इतनी रात मे आनेवाले तुम कौन हो ?"

युवराज ने कहा, "एक बात मालूम करनी है, दरवाज़ा खोलो।"

उसने कहा, "दरवाज़ा खोलने की ज़रूरत ही क्या है, जो पूछना है, पूछ क्यो नहीं लेते ?"

युवराज ने पूछा, "रायगढ़ के राजा बसन्तराय यहा हैं ?"

उसने कहा, "जी नही, शाम के बाद उनके आने की बात थी तो सही,

किन्तु वे आए नहीं। अब आज उनका आना शायद होगा नहीं।"

युवराज ने दो मुद्राएं लेकर उन्हें खनखनाते हुए कहा, "यह ले लो।"

झटपट नीचे आकर, दरवाज़ा खोलकर उसने रुपये ले लिए। तब युवराज ने उससे कहा, "मैं तुम्हारी सराय की तलाशी लेकर देखूंगा कि यहां कौन-कौन है ?

सराय के रखवाले ने सन्दिग्ध भाव से कहा, "नहीं साहब, ऐसा नहीं हो सकता।"

उदयादित्य ने कहा, "मुझे रोको मत। मैं राजकर्मचारी हूं। दो अपराधियों की तलाश में आया हूं।"

यह कहकर वे अन्दर घुस गए। सराय-रक्षक ने उन्हें फिर नहीं रोका। उन्होंने सारी सराय को छान मारा। न वसन्तराय मिले, न उनका कोई अनुचर और न कोई पठान ही।

सराय से बाहर निकलकर युवराज रास्ते पर खड़े हो गए और उसी मार्ग पर चलने लगे। कुछ दूर जाकर देखा कि सामने की ओर से एक अश्वारोही चला आ रहा है। उसके समीप आने पर युवराज ने कहा, "कौन, रतन तो नहीं ?"

अश्वारोही उसी क्षण घोड़े पर से कूद पड़ा। उसने कहा, "जी हां, युवराज ! मगर आप इतनी रात गए यहां कैसे ?"

युवराज ने कहा, "कारण तो फिर बताऊंगा। पहले यह बताओ कि दादा इस समय कहां हैं ?"

"जी, उनके तो सराय में ही रहने की बात थी।"

"यह क्या बात हुई ! वहां तो वे मिले नहीं।"

उसने अवाक् होकर कहा, "तीस अनुचरों के साथ महाराज यशोहर के लिए रवाना हुए थे। मैं किसी काम से ज़रा पिछड़ गया। इसी सराय में आज शाम को उनसे मिलने का निश्चय हुआ था।"

"रास्ते में जैसा कीचड़ है उसमें उनके पांवों के निशान अवश्य होने चाहिएं। मैं उनको देखता हुआ उनकी तलाश में जाता हूं। तुम्हारा घोड़ा लिए जाता हूं। तुम पैदल आ जाना।"

४

निर्जन पथ के किनारे, एक बरगद के तले, जमीन पर रखी वाहक-विहीन पालकी मे वृद्ध बसन्तराय बैठे हैं । समीप और कोई नही, केवल एक पठान है और वह भी पालकी के बाहर । दूर पर जन-कोलाहल सुनाई देता है और शान्त हो जाता है । रात निस्तब्ध है । बसन्तराय ने पूछा, "खा साहब, आप नही गए ?"

पठान ने उत्तर दिया, "हुजूर, मैं कैसे जाता ! आपने हमारे जान-माल की हिफाजत के लिए अपने साथी नौकरो को भेज दिया। आपको यहा रात मे, इस रास्ते के किनारे अकेला और बगैर हिफाजत के छोड़ जाऊ, इतना बडा नमकहराम हुजूर मुझे न समझें ।"

कुछ देर तक सोचते-विचारते रहने के बाद पालकी के अन्दर से अपना गजा सिर बाहर निकालकर उन्होने कहा, "खा साहब, आप बहुत अच्छे आदमी हैं !"

खा साहब ने तपाक से सलाम किया। अपने सम्बन्ध मे बसन्तराय की सम्मति से वे पूर्णत. सन्तुष्ट और सहमत थे । बसन्तराय ने मशाल के उजाले मे उनका चेहरा देखकर कहा, "आप किसी बडे खानदान के मालूम होते हैं ।"

पठान ने पुन सलाम बजाकर कहा, "कितने ताज्जुब की बात है ! हुजूर का अन्दाज़ा दुरस्त है ।"

बसन्तराय ने पूछा, "आजकल आप काम क्या करते है ?"

पठान ने लम्बी सास लेकर कहा, "हुजूर, अभी गर्दिश के मारे हैं। खेती-बाडी करके किसी तरह गुजर-बसर कर लेते हैं । हमारे शायर ने कहा है : ऐ मुकद्दर, तूने जिस घास को घास की शक्ल मे बनाया, इसमें तो तेरी बेरहमी मालूम नही होती, मगर तूने जिस बरगद को बरगद की शक्ल मे बनाकर आखिर मे उसे घास के साथ सुला दिया इससे अन्दाज़ लगाता हूं कि तू सगदिल है ।"

बसन्तराय ने अत्यन्त उल्लसित होकर दाद दी, "वाह-वा ! कवि ने क्या खूब बात कही है ! खा साहब, आप यह शेर मुझे लिखवा दीजिएगा ।"

वसन्तराय ने सोचा, 'ओह, किसी दिन जो बड़ा आदमी था, आज उसकी यह दुरवस्था ! चपला लक्ष्मी का यह कितना बड़ा अत्याचार है !' वे कुछ व्यथित हो उठे और पठान से बोले, "आपका डीलडौल अब भी इतना अच्छा और काठी ऐसी मजबूत है कि बड़ी आसानी से फौज में भर्ती हो सकते हैं ।"

पठान ने फौरन उत्तर दिया, "क्यों नहीं हुजूर ! यह तो हमारा पेशा ही है । इस गुलाम के वालिद और वालिद के वालिद, यहां तक कि परदादा और लकड़दादा सबके-सब तलवार हाथ में लिए हुए ही मरे । इस बन्दे की भी यही आरज़ू है । हमारे शायर ने कहा है..."

वसन्तराय ने हंसते हुए उसकी बात काटकर कहा, "कवि ने जो भी कहा हो, मगर खां साहब, अगर आप मेरे यहां नौकरी करना कबूल कर लें तो हो सकता है कि तलवार हाथ में लिए हुए मरने की आपकी साध पूरी हो जाए । लेकिन इतना जरूर है कि उस तलवार को म्यान से बाहर निकालने की नौबत कभी नहीं आएगी । मैं बूढ़ा हो गया हूं । प्रजा भी खूब सुखी है । भगवान से यही मनाया करता हूं कि अब लड़ने-भिड़ने की जरूरत न पड़े । तलवार छोड़े ज़माना बीत गया । अब तलवार के बदले इसने मेरा हाथ थाम लिया है ।"

यह कहकर सदा साथ रहनेवाले सितार के दो-एक तारों पर अंगुली चलाकर उन्होंने एक मधुर झंकार पैदा कर दी ।

पठान ने आंखें मूंदकर और सिर हिलाकर कहा, "अहा-हा-हा ! हुजूर बिलकुल दुरुस्त फरमाते हैं। शायर ने भी कहा है : तलवार से दुश्मन को फतह किया जा सकता है, मगर तान से दुश्मन को दोस्त बनाया जा सकता है ।"

वसन्तराय झूमकर बोले, "वाह खां साहब ! क्या बात कही है आपने ! संगीत से शत्रु को मित्र बनाया जा सकता है ! बहुत खूब ! तलवार इतनी भयंकर वस्तु है, लेकिन फिर भी उससे शत्रु की शत्रुता का नाश नहीं किया जा सकता—कहा भी कैसे जाए कि नाश होता है ! रोगी को मारकर रोग मिटाना भी क्या रोगी की चिकित्सा है ? परन्तु संगीत ऐसी मधुर वस्तु है कि वह शत्रु का विनाश किए बिना ही शत्रुता को विनष्ट कर देती है । यह क्या साधारण कवित्व है ?

इसकी जितनी दाद दी जाए, कम है।"

वृद्ध बसन्तराय इतने उत्साहित हो उठे कि पालकी से बाहर पाँव निकालकर बैठ गए। बसन्तराय ने कहा, "आप एक बार रायगढ आइए। मैं यशोहर में लौटकर आपकी भलाई के लिए यथासाध्य प्रयत्न करूंगा।"

पठान ने खुश होकर कहा, "हुजूर चाहें तो क्या नहीं कर सकते !"

फिर उसने पूछा, "हुजूर को सितार बजाना आता है ?"

बसन्तराय ने कहा, "हां !" और उसी समय सितार उठा लिया। फिर अंगुली में मिजराब फंसाकर विहाग-राग का आलाप बजाने लगे। बीच-बीच में पठान सिर हिलाकर कह उठता, "वाह, वाह ! बहुत खूब !" एक कद्रदान को पाकर बसन्तराय का कलाकार इतना उल्लसित हो उठा कि अन्त में उनके लिए पालकी के अन्दर बैठे रहना असम्भव हो गया। वे उठकर बाहर आ गए और खड़े-खड़े बजाने लगे। पदोचित गम्भीरता, मान-मर्यादा, अपना-पराया, सब कुछ भूल गए और अन्त में बजाते-बजाते गाने लगे, "कैसे काटोंगी रैन, पिया बिना !"

गाना रुकने पर पठान ने कहा, "क्या आवाज पाई है हुजूर ने !"

बसन्तराय बोले, "ऐसा प्रतीत होता है कि निस्तब्ध रात्रि में और खुले मैदान में सभीकी आवाज मीठी लगती है। गले की साधना तो बहुत की है, परन्तु मेरी आवाज की प्रशंसा तो शायद ही किसीने की हो। लेकिन जिस प्रकार विधाता ने जितने रोग दिए हैं उनकी कोई न कोई दवा भी दी है, उसी प्रकार जितने गले दिए हैं उनके कोई न कोई श्रोता भी दिए हैं। मेरे गले के भी दो प्रशंसक हैं, नहीं तो खां साहब, मैंने इस गले की दुकान को कभी का बन्द कर दिया होता। वे दोनों अनाड़ी खरीदार हैं, माल के पारखी नहीं, इसीलिए उनसे वाहवाही मिलती है। कई दिनों से उन दोनों को देखा नहीं, गाना-बजाना भी बन्द है, इसीलिए उनके पास दौड़ा जा रहा हूं। जी भरकर गाना सुनाकर, मन का बोझ हलका करके तब घर लौटूंगा।"

पठान ने मन ही मन कहा, 'तुम्हारी एक साध तो पूरी हुई, गाना सुना चुके, अब मन का बोझ क्या मैं ही उतार दूं ! तोबा, तोबा ! क्या ऐसा काम भी करना चाहिए ? काफिर को मारना सवाब तो जरूर है, लेकिन वह सवाब इतना हासिल कर चुका हूं कि कयामत के दिन

प्रताप के इहलोक और परलोक की जो हानि होगी, उसका विचार करके क्या मैं निश्चिन्त हो सकता हूं ? उसे छाती से लगाकर एक बार सब कुछ समझा-बुझा तो दूं !" कहते-कहते बसन्तराय की आंखें भर आईं। उदयादित्य ने भी दोनों हाथों से अपनी आंखें ढक लीं।

इतने में कोलाहल करते हुए बसन्तराय के सभी अनुचर लौट आए।

"महाराज कहां हैं, महाराज कहां हैं ?"

"यहीं हूं भाई। और जाऊंगा कहां ?"

सब एकसाथ बोले, "वह पठान का बच्चा कहां है ?"

बसन्तराय ने बीच-बचाव करते हुए सचिन्त भाव से कहा, "नहीं नहीं, खां साहब से तुम लोग कुछ न कहना।"

एक नौकर बोला, "आज महाराज, हम लोगों ने बड़ा कष्ट पाया है ! आज उसे···"

दूसरे नौकर ने कहा, "तू चुप तो रह ! मैं सारी बात ठीक से समझाकर कहता हूं। वह पठान का बच्चा यहां से हमें ठीक नाक की सीध में ले गया, फिर बायें हाथ को मुड़कर एक अमराई में···"

तीसरा बोला, "हां साहब, बायें हाथ मुड़कर अमराई से होता हुआ वह हमें एक मैदान से ले गया। बहुत दूर तक खेत और मैदान से होते हुए हम बंसवाड़ी को भी पार कर गए, परन्तु गांव तो गांव उसकी गन्ध भी नहीं मिली। पूरे तीन घंटे तक चलते-चलते जब पांव पिराने लगे तो कहीं जाकर गांव की शक्ल दिखाई दी। लेकिन वहां पहुंचकर देखते हैं तो पठान का बच्चा ऐसा गुम हुआ साहब, जैसे गधे के सिर से सींग !"

सभी नौकरों की बातों का सार यह निकला कि ज़रूर दाल में कुछ काला था।

५

प्रतापादित्य ने कहा, "देखो मंत्री, वे दोनों पठान अभी तक नहीं लौटे !"

मंत्री ने निवेदन किया, "इसमें मेरा तो कोई दोष नहीं है, महाराज !"

प्रतापादित्य ने रुष्ट होकर कहा, "दोष की बात नहीं हो रही है ! देर

होने का कोई न कोई कारण तो होगा ही। तुम्हारा क्या ख्याल है ?"

मंत्री बोले, "शिमुलतली यहां से बहुत दूर है। जाने, काम पूरा करने और लौटकर आने में समय तो लगेगा ही।"

मंत्री के इस उत्तर से प्रतापादित्य को सन्तोष नहीं हुआ। वे चाहते हैं कि जैसा उनका अनुमान है वैसा ही मंत्री का अनुमान भी होना चाहिए। किन्तु मंत्री उनके मन के अनुमान को ताड़ नहीं सके।

प्रतापादित्य ने पूछा, "उदयादित्य कल रात ही बाहर गया है न ?"

मंत्री—जी हां, यह तो मैं पहले ही निवेदन कर चुका हूं।

प्रतापादित्य—पहले ही निवेदन कर चुका हूं ! वाह, क्या मौके से निवेदन किया है ! जब चाहे बता देने मात्र से क्या तुम्हारा काम पूरा हो गया ? उदयादित्य पहले तो ऐसा था नहीं ! श्रीपुर के जमींदार की बेटी के कुपरामर्श से ही वह बिगड़ा है। क्यों, तुम्हारा क्या ख्याल है ?

मंत्री—कैसे कहूं, महाराज !

प्रतापादित्य ने नाराज होकर कहा, "मैं तुमसे वेद-वाक्य तो सुनना नहीं चाहता। यही तो जानना चाहता हूं कि तुम्हारा ख्याल क्या है ! अपनी राय जाहिर करो !"

मंत्री—श्रीमान की महारानीजी से अपनी बहूरानी के बारे में सारी बातें मालूम होती रहती हैं, इसलिए आप ही अनुमान कर सकते हैं, मैं भला अनुमान कैसे कर सकता हूं !

तभी एक पठान ने कक्ष में प्रवेश किया। प्रतापादित्य उसे देखते ही बोल उठे, "क्यों, क्या हुआ ? काम पूरा हुआ ?"

पठान—जी हुजूर ! इस वक्त तक काम पूरा हो गया होगा।

प्रतापादित्य—यह क्या बात हुई ? तुम्हें इतना भी नहीं मालूम ?

पठान—जी हां, मालूम है। काम पूरा हो गया, इसमें तो कोई शक नहीं, मगर मैं उस समय वहां मौजूद नहीं था।

प्रतापादित्य—तब कैसे कहते हो कि काम पूरा हो गया ?

पठान—हुजूर के हुक्म के मुताबिक मैं उनके नौकरों को उनसे जुदा करके चला आ रहा हूं। हुसैनखां ने जरूर काम तमाम कर दिया होगा।

प्रतापादित्य—यदि न किया हो ?

पठान—तो गुलाम का यह सिर हुजूर के पास जामिन रहा।

कैफियत देने के लिए अब और फिक्र करने की जरूरत नहीं रही। इस दुनिया के वेढंगेपन को देखते हुए वाजिब तो यही लगता है कि इस काफिर को मारने के वदले इससे कोई काम निकालूं।'

वसन्तराय कुछ देर चुप रहे, फिर उनसे रहा नहीं गया। उनकी कल्पना इतनी उत्तेजित हो उठी कि पठान के पास जाकर विलकुल चुपके से कहने लगे, "खां साहव, किसके वारे में कह रहा हूं, जानते हो? वे हैं मेरे नाती और नातिन!"

कहते-कहते वे अधीर हो उठे और सोचने लगे, 'मेरे अनुचर कव लौटेंगे?' और फिर सितार उठाकर वजाने लगे।

सहसा एक अश्वारोही ने समीप आकर कहा, "ओह, अव जी में जो आया! दादा साहव, सड़क के किनारे इतनी रात गए किसको गाना सुना रहे हैं?"

वसन्तराय के आनन्द और विस्मय का पार न रहा। उन्होंने सितार को उसी समय पालकी की छत पर रख दिया और उदयादित्य का हाथ पकड़कर उसे घोड़े पर से उतार छाती से लगा लिया। नाती को दृढ़तापूर्वक आलिंगन में कसे हुए ही उन्होंने पूछा, "कहो वेटा, क्या खवर है? विटिया तो अच्छी है न?"

उदयादित्य ने कहा, "जी सव कुशल-मंगल है।"

तव वृद्ध ने हंसते-हंसते सितार उठा लिया और पांव से ताल देते हुए झूम-झूमकर गाने लगे।

गाना समाप्त होने पर उदयादित्य ने पठान की ओर देखकर वसन्तराय के कान में पूछा, "दादा साहव, यह पठान कहां से आ गया?"

वसन्तराय ने फौरन कहा, "खां साहव वड़े भले आदमी हैं, समझदार भी हैं। आज की रात वड़े आनन्द से कटी।"

उदयादित्य को देखकर खां साहव मन ही मन अत्यधिक चंचल हो उठे। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करें।

उदयादित्य ने दादा साहव से पूछा, "सराय में न जाकर यहां कैसे आ गए?"

तभी पठान वोल उठा, "हुज़ूर, जान वख्शी जाए तो एक वात कहूं। मैं महाराज प्रतापादित्य की रियाया हूं। महाराज ने मुझे और

मेरे भाई को हुक्म फरमाया कि जिस समय हुजूर यशोहर की ओर तशरीफ ला रहे हों, हुजूर को कत्ल कर दिया जाए।"

वसन्तराय चौंककर कह उठे, "राम, राम !"

उदयादित्य ने कहा, "फिर उसके बाद ?"

पठान ने आगे कहा, "हम लोगों ने कभी ऐसा काम किया नहीं, लिहाज़ा उज्र करने पर हमें बहुत डराया-धमकाया गया। तब मजबूर होकर हमें इस काम के लिए तैयार होना पड़ा और हम दोनों भाई घर से निकले। राह में हुजूर से मुलाकात हो गई। मेरा भाई गांव में डाका पड़ने की बात कहकर, रोता-कांपता, आपके आदमियों को ले गया। हुजूर को कत्ल करने का भार मुझे सौंपा गया था। हालांकि महाराज का ऐसा ही हुक्म था, मगर मेरा दिल इस बुरे काम को करने की गवाही नहीं दे रहा था, लिहाज़ा मैं किसी तरह भी अपने को तैयार नहीं कर पाया। हमारे शायर ने कहा भी है 'राजा के हुक्म से, मालिक के कहने से चाहो तो सारी दुनिया को मिटा सकते हो, मगर खबरदार, बहिश्त का एक कोना भी बर्बाद न होने पाए—उसे मत मिटाना !' अब यह गरीब हुजूर की शरण में है ! घर लौटकर जाने पर जरूर हमें ज़ेरबार कर दिया जाएगा। हुजूर के पनाह देने से ही जान बच सकती है, वर्ना मौत से कोई कसर नहीं !" और पठान दोनों हाथ जोड़े दीन मुद्रा में खड़ा हो गया।

यह सब सुनकर वसन्तराय अवाक् खड़े ही रह गए। फिर कुछ देर बाद उन्होंने पठान से कहा, "मैं तुम्हें एक पत्र देता हूं। तुम यहां से सीधे रायगढ़ चले जाओ। यशोहर में लौटकर आने पर मैं तुम्हारा सारा प्रबन्ध कर दूंगा।"

उदयादित्य ने कहा, "दादा साहब, आप अब भी यशोहर जाएंगे ?"

वसन्तराय ने कहा, "हां, बेटा !"

उदयादित्य ने विस्मित होकर कहा, "यह कैसे हो सकता है ?"

वसन्तराय—प्रताप कोई गैर तो नहीं ! हज़ार अपराध करे, वह रहेगा मेरा स्नेहभाजन ही। मेरी कोई हानि होगी, इसका मुझे डर नहीं। मैं तो बेटा, संसार-सागर के किनारे खड़ा हुआ हूं, एक लहर आते ही काम तमाम हो जाएगा। लेकिन इस पाप-कर्म के करने से

प्रताप के इहलोक और परलोक की जो हानि होगी, उसका विचार करके क्या मैं निश्चिन्त हो सकता हूं ? उसे छाती से लगाकर एक बार सब कुछ समझा-बुझा तो दूं !" कहते-कहते बसन्तराय की आंखें भर आईं। उदयादित्य ने भी दोनों हाथों से अपनी आंखें ढक लीं।

इतने में कोलाहल करते हुए वसन्तराय के सभी अनुचर लौट आए।

"महाराज कहां हैं, महाराज कहां हैं ?"

"यहीं हूं भाई। और जाऊंगा कहां ?"

सब एकसाथ बोले, "वह पठान का बच्चा कहां है ?"

वसन्तराय ने बीच-बचाव करते हुए सचिन्त भाव से कहा, "नहीं नहीं, खां साहब से तुम लोग कुछ न कहना।"

एक नौकर बोला, "आज महाराज, हम लोगों ने बड़ा कष्ट पाया है ! आज उसे···"

दूसरे नौकर ने कहा, "तू चुप तो रह ! मैं सारी बात ठीक से समझाकर कहता हूं। वह पठान का बच्चा यहां से हमें ठीक नाक की सीध में ले गया, फिर बायें हाथ को मुड़कर एक अमराई में···"

तीसरा बोला, "हां साहब, बायें हाथ मुड़कर अमराई से होता हुआ वह हमें एक मैदान से ले गया। बहुत दूर तक खेत और मैदान से होते हुए हम बंसवाड़ी को भी पार कर गए, परन्तु गांव तो गांव उसकी गन्ध भी नहीं मिली। पूरे तीन घंटे तक चलते-चलते जब पांव पिराने लगे तो कहीं जाकर गांव की शक्ल दिखाई दी। लेकिन वहां पहुंचकर देखते हैं तो पठान का बच्चा ऐसा गुम हुआ साहब, जैसे गधे के सिर से सींग !"

सभी नौकरों की बातों का सार यह निकला कि ज़रूर दाल में कुछ काला था।

५

प्रतापादित्य ने कहा, "देखो मंत्री, वे दोनों पठान अभी तक नहीं लौटे !"

मंत्री ने निवेदन किया, "इसमें मेरा तो कोई दोष नहीं है, महाराज !"

प्रतापादित्य ने रुष्ट होकर कहा, "दोष की बात नहीं हो रही है ! देर

होने का कोई न कोई कारण तो होगा ही। तुम्हारा क्या ख्याल है ?"

मंत्री बोले, "शिमुलतली यहां से बहुत दूर है। जाने, काम पूरा करने और लौटकर आने में समय तो लगेगा ही।"

मंत्री के इस उत्तर से प्रतापादित्य को सन्तोष नहीं हुआ। वे चाहते हैं कि जैसा उनका अनुमान है वैसा ही मंत्री का अनुमान भी होना चाहिए। किन्तु मंत्री उनके मन के अनुमान को ताड़ नहीं सके।

प्रतापादित्य ने पूछा, "उदयादित्य कल रात ही बाहर गया है न ?"

मंत्री—जी हां, यह तो मैं पहले ही निवेदन कर चुका हूं।

प्रतापादित्य—पहले ही निवेदन कर चुका हूं ! वाह, क्या मौके से निवेदन किया है ! जब चाहे बता देने मात्र से क्या तुम्हारा काम पूरा हो गया ? उदयादित्य पहले तो ऐसा था नहीं ! श्रीपुर के जमींदार की बेटी के कुपरामर्श से ही वह बिगड़ा है। क्यों, तुम्हारा क्या ख्याल है ?

मंत्री—कैसे कहूं, महाराज !

प्रतापादित्य ने नाराज़ होकर कहा, "मैं तुमसे वेद-वाक्य तो सुनना नहीं चाहता। यही तो जानना चाहता हूं कि तुम्हारा ख्याल क्या है ! अपनी राय जाहिर करो !"

मंत्री—श्रीमान को महारानीजी से अपनी बहूरानी के बारे में सारी बातें मालूम होती रहती हैं, इसलिए आप ही अनुमान कर सकते हैं, मैं भला अनुमान कैसे कर सकता हूं !

तभी एक पठान ने कक्ष में प्रवेश किया। प्रतापादित्य उसे देखते ही बोल उठे, "क्यों, क्या हुआ ? काम पूरा हुआ ?"

पठान—जी हुजूर ! इस वक्त तक काम पूरा हो गया होगा।

प्रतापादित्य—यह क्या बात हुई ? तुम्हें इतना भी नहीं मालूम ?

पठान—जी हां, मालूम है। काम पूरा हो गया, इसमें तो कोई शक नहीं, मगर मैं उस समय वहां मौजूद नहीं था।

प्रतापादित्य—तब कैसे कहते हो कि काम पूरा हो गया ?

पठान—हुजूर के हुक्म के मुताबिक मैं उनके नौकरों को उनसे जुदा करके चला आ रहा हूं। दुर्मनखा ने जरूर काम तमाम कर दिया होगा।

प्रतापादित्य—यदि न किया हो ?

पठान—तो गुलाम का यह सिर हुजूर के पास जामिन रहा।

प्रतापादित्य—अच्छी बात है ! तुम बाहर हाजिर रहो। तुम्हारे भाई के लौट आने पर इनाम मिलेगा।

पठान बाहर दरवाज़े के समीप प्रहरी के पहरे में खड़ा हो गया।

प्रतापादित्य ने बड़ी देर तक चुप रहने के बाद मंत्री से धीरे से कहा, "यह बात प्रजा को किसी भी तरह मालूम न होने पाए, ऐसा प्रयत्न करना होगा।"

मंत्री ने कहा, "महाराज अप्रसन्न न हों, यदि मैं कहूं कि यह बात प्रकट हो ही जाएगी।"

प्रतापादित्य—यह तुमने कैसे जान लिया ?

मंत्री—इसके पहले आपने प्रकट रूप से अपने काका के प्रति विद्वेष प्रकट किया है। अपनी कन्या के विवाह के समय आपने वसन्त-राय को निमंत्रित नहीं किया, वे बिना निमंत्रण के स्वयं ही आ गए थे। आज आपने बिना किसी कारण के सहसा उन्हें निमंत्रित किया और रास्ते में न जाने किसने उनकी हत्या कर दी। ऐसी स्थिति में प्रजा आपको ही इस दुर्घटना के लिए उत्तरदायी समझेगी।

प्रतापादित्य ने कुपित होकर कहा, "तुम क्या कहना चाहते हो, यह कुछ भी मेरी समझ में नहीं आता। मालूम होता है कि इस बात के प्रकट हो जाने में ही तुम्हारी प्रसन्नता है; नहीं तो तुम रात-दिन यह क्यों कहते हो कि बात प्रकट होगी ही ! बात फूटने का तो मैं कोई कारण देखता नहीं। ऐसा लगता है कि यदि किसी भी तरह बात नहीं फैली तो तुम स्वयं घर-घर जाकर लोगों से कह आओगे।"

मंत्री ने कहा, "महाराज क्षमा करें। श्रीमान मेरी अपेक्षा सब विषयों को अधिक अच्छी तरह समझते हैं। किन्तु आपने मुझीको मंत्री बनाकर रखा है। इसलिए जो भी मेरी क्षुद्रबुद्धि में आता है, साहस करके कभी-कभी कह बैठता हूं। मेरी मंत्रणा से यदि आप रुष्ट हों, तो कृपा कर दास को इस कार्यभार से मुक्त कर दीजिए।"

प्रतापादित्य एकदम सीधे हो गए। वे बोले, "मैं सोचता हूं कि दोनों पठानों को ही क्यों न मरवा दिया जाए ! फिर तो भय का कोई कारण ही नहीं रह जाएगा।"

मंत्री ने कहा, "एक हत्या तो खैर किसी तरह छिपाई जा सकती

है, लेकिन तीन-तीन हत्याओं को छिपाना असम्भव हो जाएगा। लोगों को पता लग ही जाएगा।"

प्रतापादित्य बिगड़कर बोल उठे, "तब तो मुझे मारे भय के मर ही जाना चाहिए ! प्रजा को पता लग जाएगा ! यशोहर नायगढ़ नहीं है ! यहां प्रजा का राज्य नहीं। इसलिए तुम मुझे प्रजा का डर मत दिखाओ। यदि किसी भी प्रजाजन ने इस सम्बन्ध में मेरे विरुद्ध एक शब्द भी कहा तो उसकी जीभ गरम लोहे से दाग दी जाएगी !"

मंत्री मन ही मन बोले, 'प्रजा की जीभ का इतना डर ! फिर भी मन को दिलासा दे रहे हैं कि प्रजा से नहीं डरते !'

प्रतापादित्य ने पुन कहा, "श्राद्ध-तर्पण पूरा करके नौकर-चाकर-सहित एक बार रायगढ़ जाना होगा। मेरे अतिरिक्त वहां के सिंहासन का उत्तराधिकारी और कोई तो दिखाई नहीं देता।" ठीक उसी समय वृद्ध वसन्तराय धीरे-धीरे चलते हुए कक्ष के अन्दर आए। प्रतापादित्य चौंककर पीछे हट गए। एक बार तो उन्हें यही लगा मानो यह वसन्तराय का भूत हो। उनके मुंह से बोल नहीं फूटा। इस बीच वसन्तराय उनके समीप जाकर, उनकी पीठ सहलाते हुए कहने लगे, "प्रताप, मुझसे काहे का डर ? मैं तुम्हारा चाचा हूं। फिर भी यह विश्वास न हो तो मैं बूढ़ा हुआ, तुम्हारा अनिष्ट कर सकूं, इतनी शक्ति भी तो मुझमें नहीं।"

प्रतापादित्य की चेतना तो अवश्य लौटी, किन्तु बात बनाकर कहने की कला में वे नितान्त अपटु थे। अवाक्, निरुत्तर खड़े ही रहे। चाचा को प्रणाम करने की सुध भी नहीं रही। वसन्तराय फिर धीरे-धीरे कहने लगे, "प्रताप, मुंह से कुछ तो बोलो ! यदि दैवयोग से ऐसा काम कर बैठे हो जो मुझे देखकर लज्जा और संकोच हो रहा है, तो कोई चिन्ता मत करो। मैं उसके बारे में कोई बात मुंह पर लाऊंगा भी नहीं। आओ बेटा, हम दोनों एक बार गले मिल लें। आज अनेक दिनों के बाद भेंट हुई है, और अधिक बार भेंट होने की आशा नहीं।"

इतनी देर के बाद अब कहीं जाकर प्रतापादित्य ने चाचा को प्रणाम किया और उठकर उनसे गले मिले। इसी बीच मंत्री चुपचाप वहां से चले गए थे। वसन्तराय ने मधुर मुस्कान के साथ प्रतापादित्य की पीठ थपथपाते हुए कहा, "वसन्तराय बहुत दिनों जीवित रह गया, क्यों

प्रताप, है न ? समय निकट आता जा रहा है, अब तक क्यों बुलाहट नहीं हुई सो विधाता ही जानें। लेकिन अब अधिक विलम्ब नहीं है।"

वसन्तराय कुछ देर चुप रहे, प्रतापादित्य ने कोई उत्तर नहीं दिया। वसन्तराय कहने लगे, "तो मैं ही सब कुछ साफ-साफ बतलाता हूं। तुमने मुझे मारने के लिए छुरी उठाई, यह बात मेरे लिए छुरी के वार से भी अधिक मर्मघातिनी हो गई है।" कहते-कहते उनके नेत्रों में जल भर आया, "परन्तु फिर भी मुझे तुमपर कोई क्रोध नहीं। मैं तुमसे केवल दो बातें कहता हूं। प्रताप, तुम मेरा वध मत करना। उससे तुम्हारा इहलोक और परलोक दोनों ही बिगड़ जाएंगे। इतने दिन तक यदि तुम मेरी मृत्यु की प्रतीक्षा कर सके, तो क्या दो दिन और नहीं कर सकते ? इतनी-सी बात के लिए पाप के भागी बनोगे ?"

वसन्तराय ने जब देखा कि प्रतापादित्य न कुछ कहते हैं, न दोष स्वीकार करते हैं न अनुताप ही प्रकट कर रहे हैं, तो उन्होंने सारा प्रसंग बदल दिया। दूसरी बात छेड़ते हुए बोले, "प्रताप, एक बार रायगढ़ चलो ! बहुत दिनों से तुम वहां नहीं गए हो। वहां तुम्हें अनेक परिवर्तन दिखाई देंगे। सैनिकों ने तलवार छोड़कर हल की मुठिया थाम ली है; जहां सैनिकों की छावनी थी, वहां अब अतिथिशाला······"

इतने में प्रतापादित्य ने दूर से देखा कि पठान भागने का उपक्रम कर रहा है। अब उनके मन में जो अवरुद्ध रोष घुमड़ रहा था वह अग्नि-उत्स की भांति उच्छ्वसित हो उठा। वज्र-स्वर में कड़ककर बोले, "खबरदार, उसे छोड़ मत देना ! वह भागने न पाए ! पकड़कर बांध दो !" यह कहते हुए वह द्रुतगति से कक्ष के बाहर चले गए।

राजा ने मंत्री को बुलाकर कहा, "राज-काज में तुम्हारी बड़ी लापरवाही देखने में आ रही है !"

मंत्री ने धीरे से कहा, "महाराज, इस विषय में तो मेरा कोई भी दोष नहीं।"

प्रतापादित्य ने घुमड़कर कहा, "मैं क्या किसी विषय का उल्लेख कर रहा हूं ! मैं कह रहा हूं, राजकाज में तुम्हारी बड़ी लापरवाही देखने में आ रही है। उस दिन तुम्हें एक पत्र रखने के लिए दिया था,

तुमने उसे खो दिया !"

"डेढ महीना पहले ऐसी घटना हुई अवश्य थी, परन्तु उस समय महाराज ने मत्री से कुछ भी नही कहा था ।"

"और एक दिन उमेशराय के यहा जाने का तुम्हे हुक्म दिया था, तुमने आदमी को भेजकर काम करवाया ? चुप रहो ! झूठी सफाई मत दो । मैंने तुम्हें जता दिया है कि राज-काज मे तुम कुछ भी ध्यान नही देते हो, बडी लापरवाही करने लगे हो ।"

राजा ने प्रहरियों को बुलवाया । पहले रात के पहरूमो का वेतन काटा गया था, अब उनको कारावास का आदेश सुना दिया गया । फिर अन्त पुर में जाकर रानी को बुलाकर बोले, "रानी, राजपरिवार मे बहुत अधिक विशृंखलता दिखाई देती है । उदयादित्य पहले तो ऐसा नही था । आजकल वह जब चाहे बाहर निकल जाता है । प्रजा के काम मे शरीक होता है । मेरे विरुद्ध आचरण करता है । इस सबका मतलब क्या है ?"

रानी ने भयभीत होकर कहा, "महाराज, उसका कोई दोष नही । इस समस्त अनर्थ की जड है बडी बहू । बेटा तो मेरा पहले ऐसा नही था । जब से श्रीपुरवालो के यहा उसका ब्याह हुआ है, उस दिन से उदय कैसा होता जा रहा है, मेरी तो कुछ समझ मे नही आता !" महाराज सुरमा को अनुशासन मे रखने का आदेश देकर बाहर चले गए ।

रानी ने उदयादित्य को बुलवा भेजा । आने पर उसके चेहरे की ओर देखकर रानी ने कहा, "हाय, बेटा मेरा कैसा काला पड़ गया है ! विवाह से पहले रग कितना निखरा हुआ था—बिलकुल तपे हुए सोने की भांति ! बेटा, तेरी यह दशा किसने कर दी ? बेटा, बड़ी बहू के बहकावे मे न आया कर । उसके कहे मे लगने मे ही तेरी यह दशा हो गई है ।" सुरमा घूघट निकाले एक ओर चुपचाप खड़ी थी । रानी कहती गई, "छोटे वश मे जन्मी वह क्या तेरे योग्य है ? वह तुझे सलाह-मशविरा देना क्या जाने ! मैं ठीक कह रही हू बेटा, वह तुझे कभी अच्छी सलाह नहीं दे सकती; हमेशा यही चाहती है कि कैसे तेरा अमगल और अनिष्ट हो । हाय, ऐसी राक्षसी के साथ महाराज ने मेरे लाल का विवाह कर दिया !" और यह कहकर रानी आंसू ढारने लगी ।

उदयादित्य के ललाट पर पसीने की बूदें उभर आई । मन की

अधीरता कहीं प्रकट न हो जाए, इसलिए आंखें दूसरी ओर कर लीं।

वहीं एक पुरानी खूसट दासी बैठी हुई थी। वह हाथ नचाकर कह उठी, "श्रीपुर की लड़कियां जादू जानती हैं! ज़रूर बच्चा को उसने कुछ खिला-पिला दिया है!" वह उठी और उदयादित्य के समीप जाकर कहने लगी, "बेटा, उसने ज़रूर तुमको कुछ खिला दिया है, जादू-टोना कर दिया है। यह कोई मामूली लड़की नहीं है! श्रीपुर की लड़कियां डाइन होती हैं, डाइन! देखो न, बच्चा के शरीर की कैसी दशा हो गई! कुछ भी तो नहीं छोड़ा उस डाइन ने!" यह कहकर उसने सुरमा की ओर विष-बुझे तीर की सी दृष्टि से देखा और आंचल से अपने सूखे नेत्रों को रगड़कर लाल कर लिया। उसका यह अभिनय देखकर रानी की व्यथा और भी बढ़ गई। हठात् अन्तःपुर की सभी वृद्धाओं में क्रंदन की संक्रामकता व्याप्त हो गई। रोकर समवेदना प्रकट करने के लिए सभी रानी के कक्ष में आ जुटीं।

उदयादित्य ने करुण नेत्रों से एक बार सुरमा के मुंह की ओर देखा। घूंघट के अन्दर से सुरमा ने पति की दृष्टि को देखा और आंखें पोंछकर बिना कुछ कहे चुपचाप वहां से अपने कमरे में चली गई।

सन्ध्या के समय रानी ने प्रतापादित्य से कहा, "आज उदय को मैंने सब बातें समझा दी हैं। लड़का मेरा वैसा नहीं है। समझाने से समझ जाता है। आज अवश्य आंखें खुल गई होंगी।"

६

विभा का म्लान मुख सुरमा से और देखा नहीं गया। उसके गले लगकर वह बोली, "विभा, तू इतनी गुमसुम क्यों रहती है? तू अपने मन की बात बताती क्यों नहीं?"

विभा ने धीरे से कहा, "भाभी, मेरे पास बताने को है ही क्या?"

सुरमा ने कहा, "बहुत दिनों से ननदोईजी को देखा नहीं, इसलिए तू उदास तो रहेगी ही। उन्हें आने के लिए चिट्ठी क्यों नहीं लिख देती? तेरे भैया से कहकर भिजवाने का प्रवन्ध करवा दूंगी।"

विभा के पति चन्द्रद्वीप के अधीश्वर राजा रामचन्द्रराय के सम्बन्ध में बातें हो रही हैं। विभा गरदन झुकाकर बोली, "यहां यदि

कोई उनका आदर न करे, यदि कोई उनको बुलाना आवश्यक न समझे, तो उनका न आना ही अच्छा है । यदि वे स्वयं आएं तो मैं उन्हें मना कर दूंगी । वे राजा हैं, जहां उनका आदर-मान नहीं वहां वे क्यों आने लगे ? हमने ये किस बात से हेठे हैं जो पिताजी उनका निरादर करते हैं ?" कहते-कहते विभा अपने को और संभाल न सकी, उसका चेहरा लाल हो गया और वह रो पड़ी ।

सुषमा ने विभा के चेहरे को छाती से लगाकर उसके आंसू पोंछते हुए कहा, "अच्छा विभा, यदि तू पुरुष होती तो क्या करती ? निमन्त्रण के बिना क्या ससुराल जाती ही नहीं ?"

विभा कह उठी, "नहीं, मैं यदि पुरुष होती तो योंही चली जाती; मान-अपमान की ज़रा भी चिन्ता न करती । लेकिन उनकी बात और है, उन्हें आदरपूर्वक न बुलाया जाए तो वे क्यों आने लगे ?"

विभा ने इतनी बातें कभी नहीं की थीं । आज उद्विग्न होकर वह तो गई, परन्तु तत्काल लज्जा से गड़ भी गई । मन में सोचा, बहुत अधिक कह गई, और जो कुछ कह गई हूं वह बड़ी लज्जा की बात है, आगे से ऐसा कभी नहीं कहना चाहिए । क्रमशः उसके मन की उत्तेजना और उद्विग्नता शान्त होती गई और अब हृदय पर अवसाद का गहन बोझ आ गया । वह दोनों बाहों में मुंह ढककर सुषमा की गोद में सिर डाले पड़ गई। सुषमा सिर झुकाए उसके घने लम्बे बालों में अपने कोमल हाथ की अंगुलियों को चलाने लगी । इसी तरह बहुत-सा समय बीत गया । दोनों चुप, किसी के मुंह में कोई बात नहीं । विभा की आंख से रह-रहकर अश्रु-बिन्दु टपक पड़ते और सुषमा उन्हें होंठ से पोंछती जाती । बहुत देर बाद जब सन्ध्या हो गई तो विभा धीरे से उठ बैठी और आंखें पोंछकर ज़रा-सा मुस्करा दी । उस मुस्कराहट का अर्थ था, 'आज कैसा बचपना कर डाला !' फिर वह मुंह छिपाकर ज़रा हटकर कमरे से जाने का उपक्रम करने लगी ।

सुषमा ने मुंह से कुछ न कहा, केवल उसका हाथ थामे रही । थोड़ी देर बाद किसी बात का उल्लेख किए बिना ही उसने कहा, "विभा, सुना है कि राजा नाराज़ हुए हैं ।"

विभा ने आश्चर्यपूर्वक पूछा, "क्या सचमुच राजा नाराज़ हुए हैं ?"

सुरमा—हां !

विभा ने आग्रहपूर्वक पूछा, "कब आए ?"

सुरमा—आज तीसरे पहर के लगभग ।

विभा—अभी तक मुझसे मिलने क्यों नहीं आए ?

विभा की अधिकार-भावना को ठेस पहुंची और वह कुछ रूठ-सी गई । दादा साहब पर अपने अधिकार के विषय में वह अत्यधिक सतर्क है । यहां तक कि एक बार जब वसन्तराय उदयादित्य के साथ घण्टों बातें करते रहे और विभा अन्त:पुर में लगभग तीन घण्टे तक उनकी प्रतीक्षा करती रही और वे एक बार भी उससे मिलने नहीं आए तो विभा को इतना दु:ख हुआ कि यद्यपि उसने उस सम्बन्ध में प्रत्यक्षत: कुछ न कहा, पर वह उनसे प्रसन्न मुख से बात न कर सकी ।

सुरमा और विभा में बसन्तराय के सम्बन्ध में बातें हो ही रही थीं कि सहसा उन्होंने हंसते और गाते हुए कमरे में प्रवेश किया—"हंसी देखकर, बातें सुनकर जाऊंगा मैं अपने देश !"

विभा हंसने लगी । सुरमा ने विभा का नत मुख उठाकर कहा, "दादा साहब, विभा की हंसी देखिए ।"

वसन्तराय ने कहा, "नहीं, नहीं ! विभा के मन में कुछ और ही बात है । इसने सोचा कि यदि बिलकुल नहीं हंसूंगी तो बूढ़ा जाएगा नहीं, इसलिए थोड़ा-सा हंस दी है । मैं इस डाइन का मतलब खूब समझता हूं ? यह सब मुझे भगाने की तरकीबें हैं । किन्तु मैं शीघ्र जाने का नहीं । आ ही गया हूं तो खूब जलाकर जाऊंगा, जिससे फिर लौट आने तक याद रहे ।"

सुरमा ने हंसते हुए कहा, "देखिए दादा साहब, विभा मेरे कान में कह रही है कि याद रखने की ही यदि बात है तो जितना जला चुके हैं वही यथेष्ट है, उतने से ही याद रह जाएगी, और जलाने की जरूरत नहीं !"

यह सुनकर बसन्तराय को बड़ी प्रसन्नता हुई । वे मारे खुशी के हंसने लगे ।

विभा लज्जित होकर बोल उठी, "नहीं, नहीं, मैंने तो कुछ नहीं कहा, सचमुच कुछ नहीं कहा !"

सुरमा ने कहा, "दादा साहब, आपकी मनोकामना तो पूरी हुई ! आप हमी देखना चाहते थे सो देख चुके, बात सुनना चाहते थे सो वह भी सुन चुके, अब इसी समय प्रस्थान कर दीजिए।"

बसन्तराय बोले, "नही बेटी, मुझसे ऐसा नही होगा। मैं गठरी-भर गीत और माथे-भर पके बाल लेकर जो आया हू, उन्हे ठिकाने लगाए बिना जा नही सकता।"

विभा और जब्त नहीं कर सकी, ठठाकर हस पड़ी और बोली, "लेकिन आपके आधे सिर पर तो बाल है ही नहीं, दादा साहब !"

दादा साहब का उद्देश्य पूरा हो गया। बहुत दिनों के बाद पहली बार बोलने के समय विभा का मुह खुलवाने के लिए कुछ आयोजन करना पड़ता है, लेकिन दादा साहब के आगे एक बार विभा का मुह खुल जाने पर उसे बन्द करने के लिए और भी अधिक बड़े आयोजन की आवश्यकता होती है। वैसे दादा साहब के अतिरिक्त और किसी के भी आगे, किसी भी दशा मे विभा का मुह खुला नही करता।

बसन्तराय ने अपने गजे सिर पर हाथ फिराते हुए कहा, "वे दिन बीत गए बिटिया, जब बसन्तराय के पूरे सिर पर भौरे जैसे काले बाल लहराया करते थे। तब क्या इतना रास्ता पार करके मुझे तुम लोगों की खुशामद करने के लिए आना पड़ता था ? एक बाल के पकने ही तुम्हारे जैसी पाच-पाच सुन्दरिया उसे चुनने के लिए उम्मीदवार बनकर खड़ी हो जाती थी और मारे उत्साह के उस एक पके बाल के साथ दस काले बाल भी चुन लेती थी !"

विभा ने गम्भीर स्वर मे पूछा, "क्यो दादा साहब जब आपके पूरे सिर पर बाल थे तब क्या आप आज की अपेक्षा अधिक अच्छे लगते थे ?"

विभा को इस सबध मे मन ही मन बड़ा सन्देह था। दादा साहब का गजा सिर, दाढ़ी-मूछो से शून्य उनके अधरो की प्रशस्त हसी और पके आम के समान उनके चेहरे के उस भाव को उसने मन ही मन रूपान्तरित करने की चेष्टा की, लेकिन वह रूप उसे बिलकुल ही अच्छा नही लगा। उसने देखा कि उस गजी चाद के बिना उनके दादा साहब का रूप ही नही बनता और मूछे लगा देने से तो उनका चेहरा बिलकुल ही बिगड़ जाता है—इतना भद्दा हो उठता है कि उनकी

कल्पना-मात्र से हंसी छूटने लगती है। दादा साहब की मूछ ! और दादा साहब का सिर गंजा नहीं !

वसन्तराय ने कहा, "इस विषय में बड़ा मतभेद है। मेरी नातिनियां मेरा गंजा सिर देखकर मोहित होती हैं, उन्होंने मेरे बाल नहीं देखे। मेरी दादियां मेरे बाल देखकर मोहित होती थीं, उन्होंने मेरी चांद नहीं देखी। और जिन्होंने दोनों को देखा है वे अभी तक अपना मत स्थिर नहीं कर सकी हैं।"

विभा बोली, "लेकिन इतना तो कहना ही होगा दादा साहब, कि अभी जितनी चांद है उससे ज्यादा होने पर अच्छा नहीं लगेगा।"

सुरमा ने कहा, "दादा साहब, गंजे सिर की चर्चा फिर हो लेगी, अभी तो आप विभा के लिए कोई उपाय कीजिए।"

विभा फुर्ती से वसन्तराय के समीप आकर बोल उठी, "दादा साहब, मैं आपके सफेद बालों को चुन देती हूं।"

सुरमा—मैं कह रही थी···

विभा—सुनिए न दादा साहब, आपके···

सुरमा—विभा, तू चुप भी रह ! मैं कह रही थी दादा साहब कि आप स्वयं एक बार जाकर···

विभा—दादा साहब, आपके सिर में तो पके बालों को छोड़ और कुछ है ही नहीं, यदि उन्हें चुनने लगूं तो सारा सिर गंजा हो जाएगा।

वसन्तराय ने कहा, "यदि मुझे बहूरानी की बात सुनने न देगी, बाधक बनेगी, तो मैं राग-हिंडोल अलापना शुरू कर दूंगा, समझ गई न बिटिया ?" यह कहकर उन्होंने अपने छोटे-से सितार की खूंटियां उमेठना शुरू कर दिया। हिंडोल-राग से प्रभा को खास चिढ़ थी। उसने कहा, "तब तो खैर नहीं, भागना ही होगा यहां से !" और यह कहती हुई वह कमरे से बाहर चली गई।

तब सुरमा गम्भीर होकर कहने लगी, "विभा चुप रहकर दिन-रात जिस कष्ट को सहती हुई मन ही मन घुला करती है, उसे यदि महाराज जान जाएं तो वे भी दयार्द्र हो उठें।"

"क्यों, क्यों.? उसे क्या हुआ ?" कहते हुए अत्यन्त आग्रह के साथ वसन्तराय सुरमा के पास बैठ गए।

सुरमा ने कहा, "साल में एक बार भी जमाई बाबू को निमंत्रण भेजने की किसीको सुध नहीं रहती।"

वसन्तराय चिन्तित होकर बोले, "यह तो अच्छी बात नहीं।"

सुरमा ने कहा, "पति का ऐसा अनादर, भला बताइए तो, कौन लड़की सह सकती है? विभा बेचारी भली लड़की है, इसीसे किसी-से कुछ कहती नहीं, छिपकर मन ही मन रोती रहती है।"

वसन्तराय व्याकुल हो बोल उठे, "मन ही मन छिपकर रोती है?"

सुरमा—आज दुपहर को मेरे पास बैठकर कितना रो रही थी!

वसन्तराय—हाय, हाय! उसे एक बार बुला तो लाओ, मैं पूछ देखूं।

सुरमा विभा को पकड़ लाई।

वसन्तराय ने उसकी ठुड्डी पकड़कर कहा, "तू रोती क्यों रहती है बिटिया? तुझे जब भी कोई कष्ट हो तो अपने दादा साहब को बताती क्यों नहीं? बताने पर मैं भरसक प्रयत्न करूंगा। मैं अभी जाता हूं और प्रताप से कह आता हूं।"

विभा बोल उठी, "दादा साहब, आपके पावों पड़ती हूं, मेरे बारे में पिताजी से कुछ भी न कहें! आपके पावों पड़ती हूं, आप न जाएं!"

वह कहती रह गई और वसन्तराय वहां से चले भी गए। प्रतापादित्य के पास जाकर उन्होंने कहा "तुमने जमाई बाबू को बहुत दिनों से बुलाया नहीं, इससे उनके प्रति तुम्हारी अत्यधिक अवहेलना ही प्रकट होती है। यशोहरपति के जामाता का जितना आदर-मान होना चाहिए यदि उतना नहीं किया जाता तो उससे तुम्हारा ही अपमान होता है। यह कोई गौरव की बात तो है नहीं।"

प्रतापादित्य ने अपने चाचा की बात का जरा भी प्रतिवाद नहीं किया। उसी समय सेवक को बुलाकर चन्द्रद्वीप निमंत्रण भेजने का हुक्म दे दिया।

अन्तःपुर में विभा और सुरमा के पास लौट आकर वसन्तराय ने सितार बजाते हुए गाने की धूम मचा दी—"उदास मुंह पर हंसी खिलेगी, नयनों का होगा प्रीति-मिलन।"

विभा ने लजाकर कहा, "दादा साहब, पिताजी से आपने मेरे बारे में सब कुछ कह दिया न?"

कल्पना-मात्र से हंसी छूटने लगती है। दादा साहब की मूछ ! और दादा साहब का सिर गंजा नहीं !

वसन्तराय ने कहा, "इस विषय में बड़ा मतभेद है। मेरी नातिनियां मेरा गंजा सिर देखकर मोहित होती हैं, उन्होंने मेरे बाल नहीं देखे। मेरी दादियां मेरे बाल देखकर मोहित होती थीं, उन्होंने मेरी चांद नहीं देखी। और जिन्होंने दोनों को देखा है वे अभी तक अपना मत स्थिर नहीं कर सकी हैं।"

विभा बोली, "लेकिन इतना तो कहना ही होगा दादा साहब, कि अभी जितनी चांद है उससे ज़्यादा होने पर अच्छा नहीं लगेगा।"

सुरमा ने कहा, "दादा साहब, गंजे सिर की चर्चा फिर हो लेगी, अभी तो आप विभा के लिए कोई उपाय कीजिए।"

विभा फुर्ती से वसन्तराय के समीप आकर बोल उठी, "दादा साहब, मैं आपके सफेद बालों को चुन देती हूं।"

सुरमा—मैं कह रही थी···

विभा—सुनिए न दादा साहब, आपके···

सुरमा—विभा, तू चुप भी रह ! मैं कह रही थी दादा साहब कि आप स्वयं एक बार जाकर···

विभा—दादा साहब, आपके सिर में तो पके बालों को छोड़ और कुछ है ही नहीं, यदि उन्हें चुनने लगूं तो सारा सिर गंजा हो जाएगा।

वसन्तराय ने कहा, "यदि मुझे बहूरानी की बात सुनने न देगी, बाधक बनेगी, तो मैं राग-हिंडोल अलापना शुरू कर दूंगा, समझ गई न बिटिया ?" यह कहकर उन्होंने अपने छोटे-से सितार की खूंटियां उमेठना शुरू कर दिया। हिंडोल-राग से प्रभा को खास चिढ़ थी। उसने कहा, "तब तो खैर नहीं, भागना ही होगा यहां से !" और यह कहती हुई वह कमरे से बाहर चली गई।

तब सुरमा गम्भीर होकर कहने लगी, "विभा चुप रहकर दिन-रात जिस कष्ट को सहती हुई मन ही मन घुला करती है, उसे यदि महाराज जान जाएं तो वे भी दयार्द्र हो उठें।"

"क्यों, क्यों ? उसे क्या हुआ ?" कहते हुए अत्यन्त आग्रह के साथ वसन्तराय सुरमा के पास बैठ गए।

सुरमा ने कहा, "सात में एक बार भी जमाई बाबू को निमंत्रण भेजने की किसीको सुध नहीं रहती।"

वसन्तराय चिन्तित होकर बोले, "यह तो अच्छी बात नहीं।"

सुरमा ने कहा, "पति का ऐसा अनादर, भला बताइए तो, कौन लड़की सह सकती है ? विभा बेचारी भली लड़की है, इसीसे किसी-से कुछ कहती नहीं, छिपकर मन ही मन रोती रहती है।"

वसन्तराय व्याकुल हो बोल उठे, "मन ही मन छिपकर रोती है ?"

सुरमा—आज दुपहर को मेरे पास बैठकर कितना रो रही थी !

वसन्तराय—हाय, हाय ! उसे एक बार बुला तो लाओ, मैं पूछ देखूं।

सुरमा विभा को पकड़ लाई।

वसन्तराय ने उसकी ठुड्डी पकड़कर कहा, "तू रोती क्यों रहती है बिटिया ? तुझे जब भी कोई कष्ट हो तो अपने दादा साहब को बताती क्यों नहीं ? बताने पर मैं भरसक प्रयत्न करूंगा। मैं अभी जाता हूं और प्रताप से कह आता हूं।"

विभा बोल उठी, "दादा साहब, आपके पांवों पड़ती हूं, मेरे बारे में पिताजी से कुछ भी न कहें ! आपके पांवों पड़ती हूं आप न जाएं !"

वह कहती रह गई और वसन्तराय वहां से चले भी गए। प्रतापादित्य के पास जाकर उन्होंने कहा, "तुमने जमाई बाबू को बहुत दिनों से बुलाया नहीं, इससे उनके प्रति तुम्हारी अत्यधिक अवहेलना ही प्रकट होती है। यशोहरपति के जामाता का जितना आदर-मान होना चाहिए यदि उतना नहीं किया जाता तो उससे तुम्हारा ही अपमान होता है। यह कोई गौरव की बात तो है नहीं।"

प्रतापादित्य ने अपने चाचा की बात का ज़रा भी प्रतिवाद नहीं किया। उसी समय सेवक को बुलाकर चन्द्रद्वीप निमंत्रण भेजने का हुक्म दे दिया।

अन्तःपुर में विभा और सुरमा के पास लौट आकर वसन्तराय ने सितार बजाते हुए गाने की धूम मचा दी—"उदास मुंह पर हंसी खिलेगी, नयनों का होगा प्रीति-मिलन !"

विभा ने लजाकर कहा, "दादा साहब, पिताजी से आपने मेरे बारे में सब कुछ कह दिया न ?"

वसन्तराय ने कोई उत्तर नहीं दिया। वे अपनी ही धुन में गाते रहे।

विभा ने सितार के तारों पर हाथ रख दिया और बोली, "पिताजी से मेरी बात क्यों कही ?"

इतने में उदयादित्य का आठ साल का छोटा भाई समरादित्य कमरे में झांककर बोल उठा, "अच्छा दीदी ! दादा साहब से गप्प लड़ा रही हो ! अभी जाकर अम्मां से कहता हूं।"

"आओ, आओ भाई, आओ !" कहकर वसन्तराय ने उसे पकड़ लिया।

राजपरिवार में यह धारणा ही बन गई थी कि वसन्तराय और सुरमा मिलकर उदयादित्य का सर्वनाश किए दे रहे हैं। यही कारण था कि वसन्तराय के आते ही सर्वत्र सतर्कता बरती जाने लगती थी। समरादित्य ने वसन्तराय के हाथ से छुटकारा पाने के लिए खींच-तान शुरू कर दी। वसन्तराय ने उसके हाथ में सितार थमा कर, उसे कंधे पर चढ़ाकर, चश्मा पहनाकर, दो ही क्षण में ऐसा वश कर लिया कि वह सारा दिन दादा साहब के पीछे लगा रहा और लगातार सितार बजा-बजाकर उसके पांच तार तोड़ डाले और मिजराब जो छीना तो देने का नाम न लिया।

७

चन्द्रद्वीप के राजा रामचन्द्रराय राजप्रासाद के अपने खास कमरे में बैठे हैं। यह कमरा अठकोना है। बीच छत में एक फानूस लटक रहा है; उसपर कपड़ा चढ़ा हुआ है। दीवाल में कई ताक हैं। उनमें से एक में गणेशजी और शेष सबमें श्रीकृष्ण की नाना अवस्थाओं की भांति-भांति की मूर्तियां रखी हुई हैं। चारों ओर फर्श बिछा हुआ है, बीच में जरीदार गलीचा, उसपर मसनद और एक तकिया रखा है। मसनद के चारों कोनों में जरी की झालर लटक रही है। चारों ओर दीवाल पर देशी आइने लगे हुए हैं, किन्तु उनमें चेहरा ठीक से दिखाई नहीं देता। राजा के चतुर्दिक् जो सब मनुष्यरूपी आइने हैं उनमें भी राजा अपना मुह ठीक से नहीं देख पाते, शरीर का परिमाण बहुत बड़े रूप में दिखाई देता है। राजा के वाम पार्श्व में

एक बहुत बड़ा पेचवान और मन्त्री हरिशंकर हैं। राजा के दाहिने रमाई भांड और चश्मा पहने हुए सेनापति फर्नाण्डिज हैं।

राजा ने कहा, "क्यों भई रमाई !

रमाई ने कहा, "हुक्म, हुजूर !"

राजा हंसते-हंसते बेहाल हो गए। मन्त्री राजा से भी ज्यादा हंसे। फर्नाण्डिज तालियां बजा-बजाकर हंसने लगा।

आत्मसन्तोष से रमाई के नेत्र चमकने लगे। राजा सोचते हैं कि रमाई की बात पर न हंसने से अरसिकता प्रकट होती है; मंत्री सोचते हैं कि राजा हंसते हैं तो हंसना उनका भी कर्तव्य है; फर्नाण्डिज सोचता है कि जरूर हंसने की कोई बात होगी। इसके सिवा यह बात भी है कि जो अभागा रमाई के होंठ खुलते ही हंस नहीं पड़ता उसे रमाई रुलाकर छोड़ता है। नहीं तो रमाई के मान्धाता (बाबा आदम) के जमाने के मजाक सुनकर बहुत कम लोग ही हंस सकते हैं। हां, डर और कर्तव्य के विचार से सब हंसते हैं—राजा से लेकर द्वारपाल तक।

राजा ने पूछा, "क्या खबर है, भई?"

रमाई ने सोचा कि रसिकता की बात कहना आवश्यक है। वह बोला, "परम्परा से सुनने में आया है कि सेनापतिजी के घर में चोर घुस गया था !"

सेनापति महोदय अधीर हो उठे। वे समझ गए कि किसी पुरानी कहानी को उनपर घटाने का प्रयत्न किया जा रहा है। वे रमाई के मजाकों से जितना ही घबराते हैं, रमाई उन्हें उतना ही दबाता जाता है। राजा को बड़ी खुशी होती है। रमाई के आते ही फर्नाण्डिज बुलाया जाता है। असल में राजा के जीवन में दो ही मुख्य आमोद हैं, एक भेड़ों की लड़ाई देखना और दूसरा रमाई के सामने फर्नाण्डिज को खड़ा कर देना। राजसेवा में नियुक्त होने के बाद सेनापति की देह पर एक भी गोली या तीर का घाव नहीं लगा। लगातार हंसी के तीर-गोले खाते-खाते वह व्यक्ति रोने-रोने को हो उठा है, बेचारे की हैरानी का कोई पार नहीं।

राजा ने आंखें मिचकाकर पूछा, "फिर क्या हुआ ?"

"निवेदन करता हूं, महाराज !"

फर्नाण्डिज अपने कोट के बटन खोलने और बन्द करने लगे।

"आज तीन-चार दिन से रात के समय सेनापति महोदय के घर चोर आवा-जाही कर रहा है। पत्नी को मालूम होने पर उसने ठेल-ठालकर साहब को बहुत जगाया, पर साहब की नींद नहीं खुली।"

राजा, मन्त्री, सेनापति सभी हंसे।

"दिन में गृहिणी की बकझक सही नहीं गई तो हाथ जोड़कर बोले, 'दुहाई! आज रात में चोर को ज़रूर पकड़ूंगा।' रात दो पहर बीत गई तो गृहिणी ने पुकारा, 'अजी सुनते हो, चोर आ गया!' साहब ने फरमाया 'पर घर में तो दिया जल रहा है!' और फिर चोर को पुकारकर कहा, 'आज तो तू खूब बच गया! घर में दीया जल रहा है न, इसलिए तू मज़े से भाग सकता है। कल आना, देखता हूं अंधेरे में कैसे नहीं पकड़ा जाता!'"

राजा, मन्त्री, सेनापति सभी फिर हंसे।

राजा ने पूछा, "फिर क्या हुआ?"

रमाई ने देखा कि अभी तक राजा का मन भरा नहीं। उसने कहा, "पता नहीं क्यों, चोर को कोई खास डर नहीं लगा। वह दूसरी रात भी घर में घुस आया। गृहिणी ने चिल्लाकर कहा, 'सर्वनाश हो गया, अजी उठो!' साहब ने कहा, 'तुम उठो न!' गृहिणी बोली, 'मैं उठकर क्या करूंगी?' साहब ने कहा, 'क्यों, उठकर दीया जलाओ न! कुछ भी तो दिखाई नहीं दे रहा!' इस बात पर देवीजी को बड़ा गुस्सा आया। साहब उनसे भी ज्यादा जामे से बाहर हो गए और चमक पड़े, 'देखो, देखो, तुम्हारे ही कारण तो आज सर्वस्व चला जा रहा है। जल्दी से दीया जलाओ और मेरी बन्दूक लाओ।' इस बीच चोर ने अपना काम बनाकर कहा, 'महाशय, एक चिलम तम्बाकू पिला सकते हैं? बड़ी मेहनत करनी पड़ी है।' साहब ने उसे ज़ोर से डपटकर कहा, 'ठहर ससुरे! तुझे चिलम पिलाता हूं। अगर मेरे पास आया तो इस बन्दूक से तेरा सिर उड़ा दूंगा!' चिलम-पीकर चोर ने कहा, 'हुज़ूर, दीया भी जला दें तो बड़ी किरपा होगी। सेंध मारने की सबरी कहीं गिर गई है, ढूंढ़े नहीं मिल रही।' सेनापतिजी ने अकड़कर कहा, 'डर गया है बेटा! दूर ही रहना, भूलकर भी मेरे पास मत आना!' यह कहकर उन्होंने तुरन्त दीया जला दिया। चोर आराम से मालमता बांध-बूंधकर चलता बना। साहब ने अपनी श्रीमतीजी से कहा, 'देखा, ससुरा कैसा डरकर भागा!'"

राजा और मन्त्री का हंसते-हंसते बुरा हाल हो गया। फर्नांण्डिज साहब कांख-कूखकर 'हि: हि:' करते हुए किसी तरह बीच-बीच में हंसी छोड़ने का कर्तव्य पूरा करते रहे।

राजा ने कहा, "रमाई, सुना है कि हम ससुराल जा रहे हैं ?"

रमाई ने मुह बनाकर कहा, "असारं खलु संसारं, सारं श्वसुर-मन्दिरम् !"

राजा, मन्त्री और सेनापति क्रम से हंसे।

रमाई दीर्घ निश्वास लेकर कहने लगा, "बात झूठी नहीं है ! ससुराल का सभी कुछ सार है— खान-पान और आदर-मान सार है; वहां दूध की मलाई और मछली का सिर खाने को मिलता है, वह सभी कुछ सार-पदार्थ है; असार है तो केवल वही एक स्त्री !"

राजा ने हंसकर कहा, "वह कैसे ? तुम्हारी अर्धांगिना···"

रमाई ने हाथ जोड़कर आकुलतापूर्वक कहा, "महाराज, उसे अर्धांगना न कहें ! तीन जन्मों तक तपस्या करने के बाद ऐसी आशा है कि शायद किसी दिन उसका अर्धांग बन सकूं। अभी तो मुझ जैसे पांच अर्धांग एक-साथ जोड़कर भी उसके वृहदाकार से तुलना नहीं की जा सकती !"

राजा, मन्त्री और सेनापति बारी-बारी से ठठाकर हंसे।

हंसी रुकने पर राजा ने कहा, "भई रमाई, सुनो, तुम्हें हमारे साथ चलना होगा, सेनापति को भी साथ ले लेंगे।"

इसपर सेनापति ने आसन से उठकर कहा, "महाराज, आदेश दें तो अब चलूं।"

राजा ने सेनापति से कहा, "यात्रा की पूरी तैयारियां करो। हमारा चौंसठ डाड़ोंवाला बजरा भी तैयार होना चाहिए।"

मंत्री और सेनापति चले गए।

राजा ने कहा, "रमाई, तुम तो सभी कुछ सुन चुके हो। पिछली बार ससुराल में मेरी बड़ी किरकिरी हुई थी।"

रमाई—जी हां, महाराज को बन्दर बना दिया गया था।

राजा हंसे, मुंह में दांतों की विद्युत्-छटा विकसित हुई, किन्तु मन में घनान्धकार ही छाया रहा। रमाई को इस सम्बन्ध में पता चल गया है, यह बात उन्हें अच्छी नहीं लगी। क्योंकि और किसी के जानने पर

उतनी हानि न होती। वे ज़ोर-ज़ोर से हुक्का गुड़गुड़ाने लगे।

रमाई ने कहा, "आपके एक साले ने आकर मुझसे कहा था, 'अन्तःपुर में तुम्हारे राजा के पूंछ निकल आई है; वे रामचन्द्र हैं या रामदास?' मैंने भी उसी क्षण जवाब दिया, 'आप लोगों के यहां ब्याह करने आए तो उन्हें भी जैसा देश वैसा भेष धारण करना पड़ा!"

सुनकर राजा अतीव प्रसन्न हुए। उन्होंने सोचा, रमाई की वजह से मेरा और मेरे पुरखों का मुख उज्ज्वल हुआ और प्रतापादित्य सदा के लिए राहुग्रस्त हो गया। राजा को युद्ध-विग्रह से कोई विशेष लगाव नहीं था। वे उसे कोई महत्त्व भी नहीं देते थे। किन्तु इस प्रकार की छोटी घटनाओं को वे युद्ध से कहीं बढ़कर महत्त्व भी देते थे। अभी तक उनकी यही धारणा थी कि मेरी घोरतर अपमानसूचक पराजय हुई है। यह कलंक-कथा रात-दिन उनके मन में शूल की भांति खटकती रहती थी और वे मारे लज्जा के पृथ्वी में समा जाना चाहते थे। आज उन्हें कुछ सान्त्वना मिली कि चलो सेनापति रमाई रण में जीत आया है! परन्तु उनके मन से लज्जा और ग्लानि का भाव एकदम नहीं मिटा।

उन्होंने रमाई से कहा, "रमाई, इस बार जीतकर ही लौटना होगा। यदि विजय हुई तो मैं तुम्हें अपनी अंगूठी पुरस्कार में दूंगा।"

रमाई ने कहा, "महाराज, जीत की क्या चिन्ता! यदि मुझे आप अन्तःपुर में ले जा सकें तो स्वयं सास महारानी तक सभीको जी भर-कर मजा चखा आऊं!"

राजा ने कहा, "उसकी क्या चिन्ता! मैं तुम्हें अवश्य अन्तःपुर में ले जाऊंगा।"

रमाई ने कहा, "महाराज के लिए क्या असम्भव है!"

उन्होंने तत्काल राममोहन माल को बुलाया। राममोहन माल बल और पराक्रम में भीम के समान था। शरीर उसका लगभग साढ़े चार हाथ लम्बा था। शरीर की सभी मांसपेशियां वज्र के समान थीं। वह स्वर्गीय राजा के अनुचरों में से है। रामचन्द्रराय का उसने बचपन से लालन-पालन किया है, उन्हें गोद खिलाया है। रमाई भांड यदि किसी-से डरता है तो अकेले इसी राममोहन से। राममोहन रमाई से अत्यन्त घृणा करता है।

हुक्म पाते ही राममोहन दौड़ा आया। राजा ने उससे कहा, "हमारे साथ पचास जवान जाएंगे और तुम उन सबके सरदार बनकर चलोगे।"

राममोहन बोले, "जो हुक्म, ! क्या रमाई महाराज भी चलेंगे ?"

सुनते ही बिल्ली की सी आंखों और टेढे मुंहवाले रमाई महाराज को नानी मर गई।

८

यशोहर के राजप्रासाद मे आज कर्मचारीगण अत्यन्त व्यस्त हैं। राजा के जामाता आएंगे, इसलिए नाना प्रकार के आयोजन किए जा रहे हैं। खाने-पीने का प्रबन्ध विशाल पैमाने पर हो रहा है। चन्द्रद्वीप का राजवंश यशोहर की तुलना मे अत्यन्त तुच्छ है, इस सम्बन्ध में महारानी का महाराज प्रतापादित्य से कोई मतभेद नहीं, लेकिन फिर भी जमाई के आने की बात मे वे अत्यन्त प्रफुल्लित हैं। सवेरे से ही वे विभा को अपने हाथो से सजा रही हैं। विभा बेचारी खासी मुसीबत मे पड गई है। कारण यह है कि साज-सजावट और शृगार के सम्बन्ध मे प्रौढ़ा माता और युवती पुत्री मे काफी रुचि-भेद है। लेकिन इससे क्या, विभा की भलाई किस बात मे है, इसे महारानी अवश्य अधिक अच्छी तरह समझती हैं। विभा की धारणा है कि फीरोजी रग की तीन-तीन पतली चूड़िया पहनने से उसके गोरे हाथ बहुत अच्छे दीखेंगे। किन्तु रानी उसे सोने की आठ मोटी-मोटी चूड़िया और हीरे का एक-एक मोटा कगन पहनाकर इतनी अधिक प्रसन्न हो उठी हैं कि दिखाने के लिए राजप्रासाद की समस्त बूढी दासियो और विधवा बुआओं को बुलवा भेजा। विभा जानती है कि उसके छोटे सुकुमार चेहरे पर नथ कभी शोभा नहीं दे सकती, किन्तु महारानी ने उसे एक भारी-भरकम नथ पहना दी और उसके चेहरे को कभी बायें और कभी दायें घुमाकर बडे गर्व के साथ निरीक्षण करने लगीं। इस सबको विभा ने चुपचाप सह लिया, किन्तु रानी ने जिस ढंग से उसके बाल बाध दिए वह उसके लिए एकदम असह्य हो उठा। वह चुपके से सुरमा के पास जाकर अपनी पसन्द का जूडा बधवा आई। किन्तु वह रानी की नज़रो से बच न सका। उन्होंने देखा कि केवल जूडे के दोष

के कारण विभा का समस्त शृंगार चौपट हो गया है। उन्होंने बिलकुल साफ-साफ देख लिया कि सुरमा ने ईर्ष्या और द्वेष के कारण ही विभा का जूड़ा बिगाड़ दिया है। उन्होंने सुरमा के इस निकृष्ट उद्देश्य के प्रति विभा को सचेत कर उसकी आंखें खोलने का प्रयत्न किया। बड़ी देर तक बक-झक करने के बाद जब वे अपने मन की भी भड़ास निकाल चुकीं और उन्हें अपने उद्देश्य की सफलता का विश्वास हो गया तो उसका जूड़ा खोलकर पुनः अपने ढंग से बांध दिया। इस प्रकार विभा अपने जूड़े, अपनी नथ, अपनी मोटी-मोटी चूड़ियों और जड़ाऊ कंगनों के साथ, अपने हृदय के आनन्द-भार को लेकर खासी परेशानी में पड़ गई है। वह प्रयत्न करके भी उस असीम उल्लास और आनन्द को अपने भीतर बन्द करके रख नहीं पा रही है; नेत्र और मुंह की राह वह बिजली की भांति चमक-चमक जाता है। उसे लगता है कि महल की दीवारें तक उसकी खिल्ली उड़ा रही हैं। युवराज उदयादित्य ने आकर गम्भीर, स्नेहपूर्ण, प्रशान्त आनन्द से विभा के सलज्ज हर्षपूर्ण मुखमण्डल को देखा। वे इतने प्रसन्न हुए कि घर में जाकर स्नेहपूर्ण मृदुहास के साथ सुरमा को चूम लिया।

इतने में बसन्तराय विभा को ज़बर्दस्ती खींचते हुए कमरे में ले आए। फिर उसकी ठुड्डी उठाते हुए बोले, "देखो भैया, एक बार अपनी विभा का मुंह तो देखो! सुरमा, ओ सुरमा, एक बार देख तो जाओ!"

आनन्द से गद्‌गद होकर दादा साहब हंसने लगे। फिर विभा के मुंह की ओर देखकर बोले, "इतनी खुशी है तो खुलकर हंसती क्यों नहीं?"

प्रतापादित्य से जब उनके साले ने आकर पूछा, "जमाई राजा के स्वागत के लिए कौन गया है?" तो उन्होंने कहा, "मुझे क्या मालूम!" फिर यह पूछे जाने पर कि 'आज रास्ते में रोशनी तो होगी?' महाराज ने नेत्र विस्फारित कर कहा, "होगी ही, ऐसी तो कोई बात नहीं!" साले साहब सकुचा बोले, "नौबत तो बजेगी न?" राजा ने जवाब दिया, "इन सब बातों पर सोचने का समय मेरे पास नहीं है!"

रामचन्द्रराय को सिर से पांव तक आग लग गई। उन्होंने यही

समझा कि जान-बूझकर उनका अपमान किया गया है। पहले ऐसा हुआ है कि चकदिही पहुंचते ही उनके स्वागतार्थ राजघराने के लोग आ जाते थे। इस बार चकदिही से दो कोस आगे बढ आने पर वामनहाट में दीवानजी उनका स्वागत करने के लिए आए। खैर, दीवानजी ही आए तो उनके साथ केवल ढाई सौ आदमी आए ! क्या सारे यशोहर मे और पचास आदमी नही मिले ? राजा को लेने जो हाथी आया, रमाई भांड की राय में स्थूलकाय दीवानजी उससे कही मोटे-तगडे और भारी-भरकम शरीर वाले थे। राजाधिराज रामचन्द्र राय क्रोध और अपमान से लाल हो उठे और अपने ससुर का नाम लेकर बोले, "प्रतापादित्य से मैं किस बात मे छोटा हूं ?"

रमाई भाड ने कहा, "उम्र और रिश्ते में ; नही तो और किस बात में ! उनकी लड़की से आपने विवाह जो किया है इसीसे···"

समीप ही राममोहन माल खड़ा था। उससे अधिक सहा नहीं गया, अत्यन्त कुपित होकर बोला, "देखो रमाई महाराज, तुम बहुत बढ़-चढकर बोलने लगे हो ! हमारी बहूरानी के सम्बन्ध में तुम इस तरह मत बोला करो ! साफ कहे देता हूं।"

रमाई ने प्रतापादित्य को लक्ष्य कर कहा, "ऐसे आदित्य गली-गली देखे हैं। जानते हैं महाराज, आदित्य को जो व्यक्ति बगल में दबाकर रख सकता है वह रामचन्द्र का दास है !"

राजा मुस्कराने लगे। राममोहन धीरे-धीरे चलता हुआ राजा के सामने आ खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर बोला, "महाराज, यह ब्राह्मण आपके ससुर साहब के नाम पर जो चाहे बकता है, यह मुझसे सहा नही जाता। हुक्म हो तो इसका मुह बन्द कर दू।" राजा ने कहा, "राममोहन, तू चुप रह।" राममोहन वहा से दूर चला गया।

रामचन्द्रराय उस दिन छिद्रान्वेषण कर इस नतीजे पर पहुंचे कि प्रतापादित्य उनका अपमान करने के लिए बहुत दिनों से विस्तृत योजना बना रहे थे। मारे गुस्से के वे अपना आपा खो बैठे। उन्होंने निश्चय कर लिया कि प्रतापादित्य के सामने ऐसा रूप दिखाएंगे कि वे भी समझ जाए कि उसके जामाता कितने बड़े आदमी हैं !

जब रामचन्द्रराय प्रतापादित्य से मिलने गए तो वे अपने राज-

में मन्त्री के साथ बैठे थे। प्रतापादित्य को देखते ही रामचन्द्रराय सिर झुकाए हुए धीरे-धीरे आगे आए और उनको प्रणाम किया।

प्रतापादित्य ने किसी प्रकार की खुशी या उत्साह प्रकट नहीं किया, शान्त भाव से केवल इतना बोले, "आओ, अच्छे तो हो न ?"

रामचन्द्र ने मृदु स्वर में कहा, "जी हां !"

मन्त्री की ओर देखकर प्रतापादित्य ने कहा, "भांगामाथी परगने के तहसीलदार के खिलाफ जो शिकायत आई है उसकी कोई जांच-पड़ताल की है ?" मन्त्री ने एक खासी लम्बी-चौड़ी तहरीर निकालकर राजा के हाथ में थमा दी। उसे थोड़ा-सा पढ़कर राजा ने जामाता की ओर देखते हुए पूछा, "पिछले साल की तरह इस वार तो तुम्हारे यहां बाढ़ नहीं आई ?"

रामचन्द्र—जी नहीं ! आश्विन मास में एक बार ज़रा पानी बढ़ा...

प्रतापादित्य—मन्त्री, इस तहरीर की नकल तो रख ली है न ?

और यह कहकर वे पुनः उसे पढ़ने लगे। जब पढ़ चुके तो जामाता से बोले, "जाओ, अन्तःपुर में जाओ।" रामचन्द्र धीरे-धीरे उठ खड़े हुए। अब उनकी समझ में आ गया कि प्रतापादित्य उनसे किस बात में बड़े हैं।

९

राममोहन माल ने जब अन्तःपुर में आकर विभा को प्रणाम करके कहा, "मांजी, एक वार और आपके दर्शनों को चला आया।" तो विभा मन ही मन अतीव प्रसन्न हो उठी। राममोहन पर उसका बड़ा स्नेह है। रिश्तेदारी के कामों से वह अक्सर यशोहर आता रहता था। विभा राममोहन से किसी प्रकार का परदा नहीं करती थी। बूढ़ा, लम्ब-तड़ंग और बलिष्ठ राममोहन जब 'मांजी' कहता हुआ आ खड़ा होता तो उसमें विशुद्ध, सरल, अलंकारशून्य स्नेह का ऐसा भाव रहता था कि विभा उसके समीप अपने को नितान्त बालिका समझने लगती। विभा ने उससे कहा, "मोहन, तू इतने दिन से आया क्यों नहीं ?"

राममोहन बोला, "मांजी, पुत्र कुपुत्र हो भी सकता है, परन्तु

माता कुमाता कभी नही होती। मैं सोचा करता था, जब तक मांजी बुलाएंगी नहीं, आऊंगा नही; देखूं कब तक याद नही करती! लेकिन आपने तो एक बार भी याद नहीं किया!"

विभा से कोई जवाव नही बन पड़ा। उसने क्यों नही बुलाया, यह ठीक से समझाकर कह भी न सकी। विभा की इस परेशानी को ताड़कर राममोहन ने हसते हुए कहा, "नहीं माजी, मुझे ही छुट्टी नही मिली, इसलिए हाजिर न हो सका।"

विभा वोली, "अच्छा मोहन, तू बैठ। अपने देश की खबर सुना।"

राममोहन बैठ गया। वह चन्द्रद्वीप की खबरें सुनाने लगा। विभा गाल पर हाथ धरे मनोयोगपूर्वक सुनने लगीं।

खबरें खतम करके राममोहन ने कहा, "माजी, आपके लिए शख की ये चार चूड़िया लाया हू। आपको पहननी होंगी; मैं देखूगा।"

विभा ने सोने की चार चूड़िया उतारकर शख की चूड़िया पहन ली और हसती हुई मां के पास जाकर वोली, "मा, मोहन ने तुम्हारी सोने की चूड़िया उतरवाकर अपनी ये शख की चूड़िया पहना दी हैं।"

रानी जरा भी असन्तुष्ट न होकर हसते हुए वोली, "अच्छी तो हैं, तेरे हाथों मे खूब फव भी रही हैं।"

यह सुनकर राममोहन अत्यन्त प्रसन्न हो उठा। रानी उसे बुला ले गईं और उन्होंने उसे अपने सामने बिठाकर खिलाया-पिलाया।

धीरे-धीरे संध्या हुई। नगर की नारियो की भीड़ राजमहल मे बढ़ने लगी। पड़ोसिनें जमाई को देखने और रिश्ते के अनुसार उनसे हसी-मज़ाक करने के लिए अन्त पुर मे जमा होने लगीं। आनन्द, लज्जा, आशंका और एक अनिश्चित 'न जाने क्या होगा' के भाव मे विभा के हृदय मे उथल-पुथल मच गई। मुह और कान लाल हो उठे, हाथ-पाव शिथिल पड़ गए। यह कष्ट है या आनन्द, सो कौन जाने!

जामाता अन्त.पुर मे आए। रमणियो ने चारो ओर से उनपर हमला वोल दिया। चारों ओर हसी की कल-ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। सब ओर से कोकिल-कठियो का तीखा मज़ाक, मृणाल-वाहुओ का कठोर ताड़न, चम्पक अगुलियो के चन्द्र-नखो का तीक्ष्ण उत्पीड़न आरम्भ हो गया। रामचन्द्रराय जब बिलकुल व्याकुल हो उठे तो एक प्रौढ़ा रमणी

नके सहायतार्थ आगे आई। उसने आते ही अपने कठोर कण्ठ से ऐसा जली-कटी कहनी शुरू की और उसके मुंह से ऐसी भद्दी और फूहड़ बातें निकलने लगीं कि धीरे-धीरे सभी नगर-नारियों के मुंह बन्द हो गए और एक-एक कर सब वहां से चली गईं। जब सारा घर खाली हो गया, तब कहीं जाकर रामचन्द्रराय को विश्राम मिला।

वहां से वह प्रौढ़ा महारानी के कमरे में पहुंची। उस समय रानी दास-दासियों को खिला-पिला रही थीं। राममोहन भी एक ओर बैठा खा रहा था। वह प्रौढ़ा रानी के सामने जा खड़ी हुई और उन्हें गौर से देखकर बोली, "ओह! यही है निकपा-जननी।"

यह सुनते ही राममोहन के कान खड़े हो गए। उसने चौंककर प्रौढ़ा के मुंह की ओर देखा। तत्काल भोजन की थाली पर से वह उठा और चीते की भांति उछलकर उसने प्रौढ़ा के दोनों हाथों को मजबूती से पकड़ लिया और अकड़कर बोला, "और कोई न पहचाने पर मैं तो तुम्हें पहचानता हूं।" फिर उसने उसके माथे से साड़ी का पल्ला खींच लिया। वह और कोई नहीं रमाई भांड़ था। राममोहन मारे क्रोध के कांप उठा। उसने रमाई की चादर उतार फेंकी और उसे ऊपर उठाकर घुमाता हुआ बोला, "आज मेरे हाथों तेरी मौत लिखी है।"

वह उसे अधर में घुमा रहा था कि रानी दौड़ी आई और घबराकर बोल उठीं, "राममोहन, यह क्या कर रहा है?"

उधर रमाई ने दीन स्वर में गुहार मचाई, "दुहाई है, बाबा ब्रह्म-हत्या न करना!"

चारों ओर शोर मच गया। राममोहन ने रमाई को नीचे उतारकर क्रोध से कांपते हुए स्वर में कहा, "नीच, अभागे, तुझे मरने को और कोई ठौर नहीं मिला?" रमाई ने कहा, "महाराज ने मुझे हुक्म दिया था।"

राममोहन ने डपटकर कहा, "क्या कहा, नमकहराम? फिर ऐसी बात कही तो पत्थर से तेरा मुंह कुचल दूंगा!" यह कहकर उसने रमाई का गला पकड़ लिया। रमाई आर्तनाद कर उठा। तब राम-मोहन ने उसे चादर में कसकर बांध दिया और बोरे की भांति उठाकर बाहर ले चला। देखते ही देखते चारों ओर बात फैल गई। उस

समय रात लगभग दो पहर बीत चुकी थी। राजा के साले ने प्रतापा-न दित्य को यह खबर सुनाई कि जामाता रमाई भांड को रमणी-वेश में अन्तःपुर में ले गए और वहां उसने पुर-रमणियों के साथ, यहां तक कि महारानी के साथ भद्दे मजाक किए।

यह सुनते ही प्रतापादित्य का रूप अत्यन्त विकराल हो गया। मारे क्रोध के कांपने लगे। बिफरे शेर की भांति वे शय्या छोड़कर उठ खड़े हुए। गरजकर बोले, "लछमन सरदार को इसी समय हाजिर करो!"

लछमन सरदार के आने पर राजा ने उससे कहा, "आज रात को मैं रामचन्द्रराय का छिन्न मस्तक देखना चाहता हूं।"

सुनते ही राजा के साले ने उसके पांव पकड़ लिए और प्रार्थना की, "महाराज, क्षमा कीजिए! एक बार विभा के विषय में भी सोचिए! ऐसा न कीजिए महाराज!"

प्रतापादित्य ने पुन: गरजकर कहा, "आज ही रात को रामचन्द्र-राय का कटा हुआ सिर हमारे सामने पेश होना चाहिए।"

जब साले ने बहुत समझाया, अनुनय-विनय की, तो राजा ने थोड़ी देर तक सोचते रहने के बाद लछमन सरदार से कहा, "देखो लछमन, कल सवेरे रामचन्द्रराय जब अन्तःपुर से निकले तो उसका वध करके छिन्न मस्तक हमारे पास ले आना।"

लछमन 'जो हुक्म' कहकर चला गया। साले साहब बहुत पछताए। उन्होंने जितना सोचा था, मामला उससे कहीं आगे बढ़ गया था। तब वे चुपके से अन्तःपुर में गए और उन्होंने धीरे से विभा का दरवाजा खटखटाया। उस समय दूर आधी रात की नौबत बज रही थी। निस्तब्ध रात्रि में नौबत की गूंज चांदनी और दक्षिणी हवा के साथ मिलकर सुपुप्त प्राणों में स्वप्नों की सृष्टि कर रही थी। विभा के शयनकक्ष की खुली खिड़की की राह चांदनी अन्दर आकर बिस्तरे पर पड़ रही थी। रामचन्द्रराय गहरी नींद में सोए हुए थे। विभा गाल पर हाथ रखे विचार-मग्न बैठी थी। जब चांदनी की ओर देखती तो उसकी आंखों से दो बूंद आंसू टपक पड़ते थे। उसने पति-मिलन की जो कल्पना कर रखी थी वैसा कुछ तो हुआ नहीं। उसका मन अन्दर से रुदन कर रहा था। इतने दिनों से जिस दिन की प्रतीक्षा

[illegible] कहीं भी यह भाव आया तो, लेकिन किस रूप में !

रामचन्द्रराय आए, शय्या पर शयन किया, परन्तु विभा से उन्होंने बात तक न की। प्रतापादित्य ने उनका अपमान किया है; प्रतापादित्य का अपमान करने के लिए विभा की उपेक्षा करना ही ठीक होगा। वे अपनी पत्नी को बता देना चाहते हैं कि तुम यशोहर के प्रतापादित्य की पुत्री हो, चन्द्रद्वीपाधिपति राजा रामचन्द्रराय के पार्श्व में तुम कैसे शोभा पा सकती हो ? यह निश्चय करके वे पीठ फेरकर जो सोए तो फिर करवट भी नहीं बदली। उनकी सारी नाराजगी अब विभा के ऊपर है।

और विभा बैठी सोच रही है। एक बार चांदनी की ओर देखती है और एक बार सोए हुए पति के मुख की ओर। उसका हृदय कांप उठता है और रह-रहकर दीर्घ निश्वास निकल जाता है। प्राणों में बड़ी व्यथा हो रही है और मन पछाड़ें खा रहा है।

सहसा रामचन्द्रराय की नींद खुल गई। एकाएक उनकी दृष्टि विभा पर पड़ गई। नींद से सहसा जाग पड़ने के उस क्षण में उन्हें मान-अपमान और नाराजगी का कोई खयाल नहीं रहा, याद भी नहीं आई। गहरी नींद के बाद मन खूब स्वस्थ हो गया था। रोष चला गया था। विभा के उस अश्रुप्लावित करुण मुख को देखकर उनके मन में करुणा जाग उठी। विभा का हाथ पकड़कर बोले, "विभा, रोती हो ?"

विभा आकुल हो उठी। मुंह से वह कुछ भी न कह पाई। उसकी आंखें मुंद गईं। रामचन्द्रराय उठकर बैठ गए, विभा के सिर को धीरे से उठाकर गोद में रख लिया और उसके आंसू पोंछ दिए।

ठीक इसी समय किसीने दरवाजा खटखटाया। रामचन्द्रराय चौंककर बोल उठे, "कौन ?" बाहर से जवाब मिला, "जल्दी दरवाजा खोलो !"

१०

रामचन्द्रराय शयनकक्ष का द्वार खोलकर बाहर निकल आए। राजा के साले रमापति ने उनसे कहा, "जमाई राजा, आप इसी समय यहां से भाग जाइए; एक क्षण की देर मत कीजिए !"

इतनी रात बीते यह बात सुनकर राजा रामचन्द्रराय सहसा घबरा

उठे। उनका चेहरा फक हो गया। सास रुकती-सी मालूम हुई। बड़ी मुश्किल से केवल इतना पूछ सके, "क्यों, क्यो? क्या हो गया?"

"जो हुआ है वह मैं बता नही सकता। इसी समय भागो!"

विभा भी पलग पर से उठकर बाहर आ गई और उसने पूछा, 'मामाजी, क्या हुआ है, बताइए।"

रमापति ने कहा, "सो तुम्हे सुनने की जरूरत नही बेटी!"

विभा के मन-प्राण काप उठे। उसे एक बार वसन्तराय का खयाल आया, एक बार उदयादित्य के बारे मे चिन्ता हुई। वह बोल उठी, "बताइए न मामाजी, क्या हुआ है?"

रमापति ने उसके प्रश्न का कोई उत्तर न दिया। उन्होंने रामचन्द्र-राय से कहा, "भैया, व्यर्थ देर हुई जा रही है। पूछताछ करने के बदले छिपकर जल्दी भागने की कोशिश करो।"

सहसा विभा के मन मे दारुण अशुभ आशका जाग उठी। लौटने के लिए उद्यत मामा का रास्ता रोककर बोली, "आपके पावो पडती हू मामाजी, जो हुआ है साफ-साफ बता दीजिए।"

रमापति ने चारो ओर डरी हुई दृष्टि डालकर कहा, "शोर मत कर विभा, चुप रह। मैं सब कुछ बताए देता हू।"

रमापति के मुह से सारी बात सुनकर विभा के मुह मे चीख निकलने ही वाली थी कि रमापति ने उसका मुह दबा दिया और बोला, "चुप रह। चीखकर तो तू सर्वनाश ही कर देगी!"

विभा सास रोककर जहा की तहा ही बैठ गई।

रामचन्द्रराय ने भीत स्वर मे कहा, "अब मैं क्या उपाय करूं? किधर से और कैसे भागू, यह भी तो मालूम नही!"

रमापति ने कहा, "चारो ओर कडा पहरा लगा हुआ है। मैं एक बार जाकर देख आऊ, यदि कही कोई रास्ता निकल आए।"

लेकिन विभा ने उनका हाथ पकडकर कहा, "मामाजी, आप कहा जा रहे हैं? कही मत जाइए। यही हमारे पास रहिए।"

रमापति ने समझाया, "विभा, पागल तो नही हुई हो? यहा रह-कर तो मैं कुछ भी नही कर सकता। चारो ओर की हालत देखकर मैं अभी लौटता हूं।"

विभा फिर भी राज़ी नहीं हुई। उसके हाथ-पांव थर-थर कांप रहे थे। बोली, "मामाजी, आप थोड़ी देर यहीं रुके रहिए। मैं ज़रा भाई साहब के पास हो आऊं।"

और उत्तर की अपेक्षा किए बिना ही वह तत्काल उदयादित्य के शयनकक्ष में पहुंच गई।

क्षीण चन्द्रमा अस्त हो रहा था। चारों ओर अन्धकार होता जा रहा था। कहीं कोई शब्द और हलचल नहीं। रामचन्द्रराय ने अपने शयनकक्ष के द्वार पर से सामने देखा कि दोनों ओर अन्तःपुर के सभी कमरों के दरवाज़े वन्द थे। सब निःशंक सो रहे थे। रामचन्द्रराय कल्पना करने लगे, चारों ओर के अन्धकार में न जाने कहां एक छुरी उनकी प्रतीक्षा कर रही है। उसी समय हवा का एक झोंका आया और कमरे का दीया बुझ गया। रामचन्द्रराय का कलेजा मुंह को आ गया। उन्होंने यही सोचा कि कोई आदमी घर में छिपा बैठा है और उसीने जान-बूझकर दीया बुझा दिया है। वे घिघिया उठे, "मामाजी!" रमापति ने कहा, "क्या बात है भैया?" रामचन्द्र मन ही मन सोचने लगे, 'विभा रहती तो अच्छा था।'

उदयादित्य को देखते ही विभा रो उठी और गिर पड़ी। उसके मुंह से एक शब्द भी न निकला। सुरमा ने उसे उठाकर बिठाया और पूछा, "क्या हुआ है विभा?" विभा सुरमा से लिपट गई, लेकिन मुंह से फिर भी कुछ कह नहीं सकी। उदयादित्य ने स्नेह से विभा के माथे पर हाथ फेरते हुए पूछा, "क्यों विभा, क्या बात है?" विभा ने अपने भैया के दोनों हाथ पकड़कर कहा, "भैया, आप मेरे साथ चलिए। सब वहीं सुन लीजिएगा।"

तीनों व्यक्ति विभा के शयनकक्ष के द्वार पर जा पहुंचे। वहां अंधेरे में रामचन्द्रराय बैठे और रमापति खड़े हुए थे। उदयादित्य ने वहां आते ही पूछा, "मामाजी, बात क्या है?"

रमापति ने जब सारा किस्सा कह सुनाया तो उदयादित्य ने सुरमा के चेहरे की ओर देखते हुए कहा, "मैं अभी पिताजी के पास जाता हूं। मैं उन्हें ऐसा काम कदापि नहीं करने दूंगा।"

सुरमा ने कहा, "इससे क्या कोई लाभ होगा? इससे तो अच्छा

है कि दादाजी को उनके पास भेजो। तब शायद कुछ हो भी सके।"

उस समय बसन्तराय गहरी नींद सो रहे थे। जागकर उदयादित्य को देखा तो सोचा कि सवेरा हो गया। सितार उठाकर एकदम भैरवी छेड़ दी।

उदयादित्य ने उन्हें हाथ के इशारे से रोकते हुए कहा, "दादा साहब, बड़ा संकट आ पड़ा है।"

सुनते ही बसन्तराय का गाना रुक गया। उदयादित्य से घबराकर पूछने लगे, "ऐं, क्या कह रहे हो बेटा ? संकट कैसा ?

उदयादित्य के मुह से सारी बात सुनकर बसन्तराय धम्म से बिछौने पर बैठ गए। फिर उदयादित्य के चेहरे की ओर देखते हुए सिर हिलाकर बोले, "नही बेटा, ऐसा भी कभी हो सकता है !"

उदयादित्य ने कहा, "समय बिलकुल नही है, आप अभी पिताजी के पास जाइए।"

बसन्तराय उठकर चल दिए। लेकिन जाते-जाते भी वे यही कहते जा रहे थे, "बेटा, यह भी कही हो सकता है ! ऐसा भी कही सम्भव है !"

प्रतापादित्य के पास पहुचते ही उन्होंने पूछा, "क्यो बेटा प्रताप, क्या ऐसा भी कभी हो सकता है?"

प्रतापादित्य अभी तक सोने नही गए थे। वे अपने मन्त्रणागृह में ही बैठे हुए थे। एक बार उनके मन में आया कि लछमन सरदार को वापस बुला लेना चाहिए ; लेकिन दूसरे ही क्षण यह विचार मन से लुप्त भी हो गया। क्या प्रतापादित्य ने कभी दो बार आदेश दिया है ? क्या कभी दिए हुए आदेश को रद्द किया है ? आदेश देकर उसे रद्द करने का लड़कपन उनका काम नही। लेकिन विभा का क्या होगा ? वह विधवा हो जाएगी। परन्तु रामचन्द्रराय यदि जान-बूझकर आग में कूद पड़े तब भी विभा विधवा हो जाएगी। रामचन्द्रराय ने जान-बूझकर प्रतापादित्य की रोषाग्नि में छलांग लगाई है, इसके परिणाम-स्वरूप विभा को अनिवार्य रूप से विधवा होना पड़ेगा। इसमें प्रतापादित्य का क्या दोष ? किन्तु इतनी सब बातें उनके मन में नही उठी। बीच-बीच में समस्त घटना तीव्र रूप से उनके मन में जाग उठती है तभी वे अधीर होकर सोचने लगते हैं कि रात कब बीतेगी। ठीक इसी

समय वृद्ध वसन्तराय आकुल-व्याकुल वहां आए और प्रतापादित्य के दोनों हाथ पकड़कर बोल उठे, "यह भी कहीं सम्भव हो सकता है ?"

प्रतापादित्य ने जल-भुनकर कहा, "क्या सम्भव नहीं है ?"

वसन्तराय बोले, "बच्चा है, नादान है ! परिणाम को जानता नहीं। क्या वह तुम्हारे रोष का पात्र है ?"

प्रतापादित्य ने ऐंठकर कहा, "हुं:, बच्चा है ! आग में डालने से हाथ जल जाता है, क्या इतना समझने की भी उसकी उम्र नहीं ? वाह, बच्चा है ! कहीं के एक दरिद्र, मूर्ख ब्राह्मण को पकड़ लाया, जो मूर्ख के आगे दांत दिखाकर अपना पेट भरता है, उस मूर्ख को औरत बनाकर हमारी महारानी का अपमान करवाने के लिए अन्तःपुर में ले आया—इतनी बुद्धि जिसमें है, क्या उसके भेजे में यह अक्ल नहीं कि इसका परिणाम क्या होगा ? दुःख इस बात का है कि जब माथे में अक्ल आएगी तब उसका माथा ही शरीर पर न होगा !" यह कहते-कहते वे क्रोधोन्मत्त हो उठे और उनका शरीर और भी कांपने लगा। उनकी प्रतिज्ञा और भी दृढ़ हो गई, उनकी अधीरता और भी बढ़ गई।

वसन्तराय ने सिर हिलाकर कहा, "नहीं बेटा, वह बच्चा ही है। वह कुछ भी नहीं जानता।"

प्रतापादित्य अब अधिक सहन नहीं कर सके। उन्होंने झुंझलाकर कहा, "देखिए चाचा साहब, यशोहर के रायवंश का मान-अपमान किसमें है, यही ज्ञान यदि आपको होता तो क्या इन पके बालों पर मुगल बादशाह के शिरोपाव को धारण किए आप यों घूमते रहते ? बादशाह की कृपा से कृतज्ञ होकर आप जो गर्वपूर्वक सिर ऊंचा किए रहते हैं उनसे इस प्रतापादित्य का माथा नीचा हो गया है। यवनों के चरणों की धूल को आप माथे पर लगाते रहें। आपके इस यवन-पदधूलि-मण्डित माथे को धूल में मिलाने की मेरी बड़ी साध थी, लेकिन विधाता की विडम्बना से उसमें बाधा पड़ गई। आपसे साफ-साफ कह दिया, लेकिन आप हैं कि समझाने से भी नहीं समझते ! आज रायवंश का कितना बड़ा अपमान हुआ है, लेकिन आप हैं कि उस अपमान करनेवाले के लिए क्षमा-याचना करने आ पहुंचे !"

इसपर वसन्तराय ने धीरे से कहा, "प्रताप, मैं समझ गया। जब

तुम एक बार तलवार उठाते हो तो वह किसी न किसीकी गर्दन पर गिरकर ही दम लेती है। मैं उस तलवार का लक्ष्य बनने से बच गया तो अब एक दूसरा व्यक्ति उसका लक्ष्य बन गया। तो सुनो प्रताप, तुम्हारे मन में यदि दया न आए, तुम्हारा क्षुधित क्रोध यदि किसीका ग्रास करना ही चाहे, तो वह मेरा ही करे। यह रहा मेरा बूढ़ा सिर। इसे उड़ाकर यदि तुम्हारी तृप्ति होती हो तो बेधड़क उड़ा दो। निकालो तलवार।" उनके चेहरे पर अत्यन्त मृदु मुसकान दिखाई दी, "*लेकिन सोच देखो प्रताप, विभा हमारी दुधमुही बिटिया है,* उसकी आंखों से जब आंसू गिरने लगेंगे, तब···"

कहते-कहते बसन्तराय स्वय ही रो पड़े और रोते-रोते बोले, "मुझे मार डालो, प्रताप! जीवन में मेरे लिए अब कोई सुख नहीं रहा। विभा की आंखों मे आसू देखू, उसके पहले ही मेरा अन्त कर दो।"

प्रतापादित्य अभी तक चुपचाप सुन रहे थे। बसन्तराय की बात समाप्त होते ही वे उठे और वहा से चले गए। समझ गए कि बात फूट गई है। प्रहरियों को बुलाकर हुक्म दिया, "राजमहल के चारों ओर जो नहर है उसे *बड़े-बड़े लट्ठों से बन्द कर दिया जाए।"* उस खाई में रामचन्द्रराय का बजरा था। प्रहरियो को यह हिदायत दे दी गई कि आज रात मे अन्तःपुर से कोई बाहर जाने न पाए।

११

बसन्तराय जब अन्तःपुर में लौटकर आए तो उन्हे देखकर विभा पुन. एक बार जोर से रो पड़ी। बसन्तराय ने उदयादित्य का हाथ पकड़कर कहा, "भैया, अब तुम्ही कोई रास्ता निकालो!" तब उदयादित्य ने अपनी तलवार हाथ मे ले ली और बोले, "चलो, मेरे साथ-साथ चलो।" सब उनके साथ चलने लगे। उदयादित्य ने विभा से कहा, "विभा, तू यहीं रह।" लेकिन विभा ने उनकी बात नहीं मानी। रामचन्द्रराय ने भी कहा, "नहीं, विभा को साथ चलने दो।"

उस निस्तब्ध रात मे सबके-सब दबे पावो चलने लगे। ऐसा लगने लगा मानो विभीषिका चारो ओर से अपने अदृश्य हाथो को फैला रही हो। रामचन्द्रराय घबराए हुए तो थे ही, अब मारे डर के

अपने आगे-पीछे और अगल-बगल देखने लगे। मामा के प्रति उन्हें बीच-बीच में सन्देह होने लगा। अन्तःपुर से निकलकर बाहर जाने के द्वार पर आकर उदयादित्य ने देखा कि वह बन्द है। विभा ने भय-विकम्पित रुंधे गले से कहा, "भैया, नीचे जाने का द्वार शायद बन्द न किया गया हो, उसी ओर चलो।" सब उस ओर चल पड़े। नीचे जानेवाली सीढ़ी लम्बी और अंधेरी थी। जब सीढ़ी समाप्त हो गई और दरवाज़े के निकट पहुंचे तो वह भी बन्द मिला। पुनः सब धीरे-धीरे ऊपर चढ़ने लगे। अन्तःपुर से बाहर जाने के जितने भी रास्ते थे सभी बन्द मिले।

जब विभा ने देखा कि बाहर जाने का कोई भी रास्ता खुला नहीं है तो उसने अपने आंसू पोंछ डाले। पति का हाथ पकड़कर वह उन्हें अपने शयनकक्ष में ले गई और बोली, "देखती हूं, इस घर में से तुम्हें कौन निकाल ले जाएगा! तुम जहां भी जाओगे, मैं तुम्हारे आगे-आगे चलूंगी। देखती हूं, कौन मुझे रोकता है!"

उदयादित्य ने द्वार के बाहर खड़े होकर कहा, "मेरे जीते-जी कोई भी घर में प्रवेश करने नहीं पाएगा, मुझे मारकर ही अन्दर जा सकेगा।"

सुरमा कुछ न बोली। वह अपने पति के समीप जा खड़ी हुई। बसन्तराय सबके आगे खड़े हो गए। मामा धीरे-धीरे वहां से चले गए।

थोड़ी देर के बाद सुरमा ने उदयादित्य से मृदु स्वर में कहा, "हमारे यहां खड़े रहने से उलटे अनिष्ट की ही आशंका है। पिताजी जितनी ही बाधा पाएंगे, उनका संकल्प उतना ही दृढ़ होगा। आज रात को ही इनको महल से भगाने का कोई प्रबन्ध कर सको तो अच्छा होगा।"

उदयादित्य चिन्तित भाव से कुछ देर सुरमा के मुंह की ओर देखकर बोले, "तो मैं जाता हूं; बल-प्रयोग करके भी कुछ हो सके तो देखता हूं।"

सुरमा ने सिर हिलाकर सम्मति प्रदर्शित करते हुए कहा, "जाओ।"

उदयादित्य ने अपना दुपट्टा उतारकर फेंक दिया और चल दिए। सुरमा कुछ दूर उनके साथ-साथ गई। एकान्त में पहुंचकर उसने पति को छाती से लगा लिया। उदयादित्य ने सिर झुकाकर उसका एक दीर्घ चुम्बन लिया और दूसरे ही क्षण आंखों से ओझल हो गए। तब सुरमा अपने शयनकक्ष में लौट गई। परन्तु अकेले उस घर में उससे

श्रौर बैठा न गया। वह उठकर विभा के पास चली श्राई।

वसन्तराय ने व्यथित कंठ से कहा, "उदय श्रभी तक नहीं लौटा, श्रब क्या होगा ?"

सुरमा दीवार से टिककर खड़ी हो गई श्रौर बोली, "जो विधाता को मंजूर होगा।"

उधर रामचन्द्रराय मन ही मन श्रपने पुराने नौकर राममोहन का सर्वनाश कर रहे थे; उसीके कारण विपद का यह बादल टूट पड़ा था। इस श्रपराध के लिए उसे जो भी दण्ड दिया जाए, थोड़ा होगा।

उदयादित्य तलवार हाथ में लिए श्रन्तःपुर से बाहर जानेवाले द्वार पर पहुंचे। दरवाज़े को ज़ोर से ठोकर मारकर बोले, "कौन ?"

बाहर से उत्तर मिला, "जी, मैं सीताराम हूं।"

युवराज ने डपटकर कहा, "जल्दी दरवाज़ा खोलो।"

उसने तुरन्त दरवाज़ा खोल दिया। उदयादित्य ने बाहर जाने के लिए पांव बढ़ाया तो वह हाथ जोड़कर बोला, "युवराज, माफ कीजिए, श्राज रात में रनिवास से किसीको भी बाहर जाने देने का हुक्म नहीं है।"

युवराज ने कहा, "सीताराम, तो क्या तुम भी मेरे विरुद्ध हथियार उठाश्रोगे ? श्रच्छी बात है, तो श्रा जाश्रो !" यह कहकर युवराज ने तलवार निकाल ली।

सीताराम हाथ जोड़कर बोला, "नहीं युवराज, मैं श्रापके खिलाफ हथियार नहीं उठाऊंगा। श्रापने दो-दो बार मेरी जान बचाई है। श्राप मेरा वध न करें। हथियार छीनकर मुझे बांध दीजिए, जिससे कल महाराज के श्रागे मेरी जान बच सके।"

युवराज ने ऐसा ही किया श्रौर वहां से श्रागे बढ़े। कुछ दूर जाने पर एक कम ऊंची दीवार मिली। उसमें एक ही दरवाज़ा था श्रौर वह बन्द था। उन्होंने दरवाज़ा खटखटाया नहीं, उछलकर दीवार पर चढ़ गए। देखा तो एक पहरेदार दीवार से टिका बड़े श्राराम से सो रहा था। बहुत सावधानी से वे नीचे उतर पड़े श्रौर झपटकर पहरुए पर चढ़ बैठे। उसके हथियार छीनकर उसे भी कसकर बांध दिया। उसके पास दरवाज़े की चाभी थी। चाभी लेकर उन्होंने दरवाज़ा खोल दिया। श्रब पहरुए

को होश आया और उसने कहा, "युवराज, आप क्या कर रहे हैं ?"
युवराज बोले, "अन्तःपुर के द्वार खोल रहा हूं।"
पहरुए ने कहा, "कल महाराज के आगे क्या जवाब दूंगा ?"
उदयादित्य ने कहा, "कह देना कि युवराज ने मेरे साथ जबर्दस्ती करके अन्तःपुर के द्वार खोल दिए थे। तुझे छुटकारा मिल जाएगा।"
वहां से उदयादित्य उस जगह पहुंचे जहां रामचन्द्रराय के आदमी ठहरे हुए थे। वहां केवल राममोहन और रमाई भांड सो रहे थे, बाकी नाव पर चले गए थे। युवराज ने राममोहन को धीरे से हिलाया। वह चौंककर उछल पड़ा। चकित होकर बोला, "कौन ? युवराज ?"
युवराज उसे बाहर ले गए और सारा किस्सा बताया। तब राम-मोहन ने सिर पर चादर लपेट, लाठी कंधे पर रख ली और क्रोधोन्मत्त होकर बोला, "देखता हूं लछमन सरदार में कितना जोर है ! युवराज, आप किसी तरह मेरे महाराज को एक बार मेरे पास ला दीजिए। मैं अकेला ही लाठी के बल पर सौ आदमियों को भगा सकता हूं।"
तब उदयादित्य अन्तःपुर में जाकर रामचन्द्रराय को बुला लाए। उनके साथ और लोग भी बाहर आ गए।
राममोहन को देखते ही रामचन्द्रराय का क्रोध भड़क उठा और वे बोले, "मैं अभी तुझे बर्खास्त करता हूं। मेरे सामने से दूर चला जा ! तू पुराना आदमी है, इससे अधिक सज़ा तुझे क्या दूं ! यदि इस बार बच गया तो फिर तेरा मुंह कभी नहीं देखूंगा !" कहते-कहते रामचन्द्रराय का गला भर आया। वास्तव में वे राममोहन को चाहते थे। बचपन से राममोहन उनका लालन-पालन जो करता आया है।
राममोहन ने हाथ जोड़कर कहा, "आप मुझे बर्खास्त करनेवाले कौन होते हैं ? मेरी यह नौकरी तो भगवान की दी हुई है। जिस दिन जमराज का बुलावा आएगा उसी दिन भगवान मुझे बर्खास्त करेगा। आप मुझे रखें, चाहे न रखें, मैं आपका नौकर बना रहूंगा।" यह कह-कर वह रामचन्द्रराय के रक्षणार्थ उनकी बगल में खड़ा हो गया।
उदयादित्य ने कहा, "राममोहन, क्या उपाय सोचा ?"
राममोहन ने जवाब दिया, "आपके चरणों के आशीर्वाद से यह लाठी ही उपाय है और या काली का भरोसा है।"

उदयादित्य ने सिर हिलाकर कहा, "यह उपाय किसी काम का नहीं। अच्छा, यह बताओ, तुम लोगों का बजरा किधर है ?"

राममोहन ने बताया, "राजमहल के दक्षिण की ओर नहर में।"

तब उदयादित्य उसे और सबको छत पर ले गए। छत से नहर लगभग सत्तर हाथ नीचे और थी। राममोहन ने प्रस्ताव किया कि वह रामचन्द्रराय को पीठ पर बाधकर नहर मे कूद पड़ेगा। लेकिन बसन्त-राय, विभा और स्वयं रामचन्द्रराय ने इसका विरोध किया। तब उदयादित्य अन्त पुर में जाकर बहुत-सी चादरें ले आए। राममोहन ने उन्हें आपस में बाधकर एक मजबूत रस्सी-सी बनाकर एक छोटे-से खम्बे से बांध दिया और उसका दूसरा छोर बजरे की ओर लटका दिया। फिर उसने रामचन्द्रराय से कहा, "आप मेरी पीठ पर चढ जाइए, मैं आपको लिए हुए इस रस्सी के सहारे उतर पड़ूगा।" निरुपाय रामचन्द्र को उसकी इस योजना से सहमत होना पडा।

राममोहन ने रामचन्द्रराय को पीठ पर उठा लिया। रामचन्द्र-राय आखें मूद उसकी पीठ से लिपट गए। अन्त मे विभा की ओर देखकर राममोहन ने कहा, "मा, अब हुक्म हो ! तुम्हारे इस बेटे के रहते डरने की कोई बात नही।"

राममोहन रस्सी के सहारे नीचे उतरने लगा। विभा प्राणपण से उस खम्बे से लिपट गई। जब राममोहन रस्सी के छोर पर पहुच गया तो उसने हाथ छोड उसे दातो से पकड लिया और रामचन्द्र राय को पीठ से छुड़ाकर बडी सावधानी से बजरे पर उतार दिया और अन्त मे वह स्वय भी कूद पड़ा। नौका पर पाव रखते ही रामचन्द्र-राय मूर्च्छित हो गए।

उदयादित्य मूर्च्छित विभा को स्नेहपूर्वक गोद मे उठाकर अन्त पुर मे ले गए। सुरमा ने उनका हाथ पकडकर कहा, "अब आपका क्या होगा ?" तो उन्होने कहा, "मुझे अपनी कोई चिन्ता नही।"

उधर नौका कुछ दूर जाकर रुक गई। देखा तो बडे-बडे लट्ठों से नहर में रोक लगा दी गई थी। इतने मे सहसा प्रहरियों ने दूर से देखा कि नाव भागी जा रही है। उन्होंने पत्थर बरसाना शुरू कर दिया, लेकिन एक भी नाव तक पहुच न सका। तब एक आदमी बन्दूक लाने

दौड़ा। किसी तरह बन्दूक मिली, तो चकमक नदारद था। इधर चकमक और बारूद की चिल्ल-पुकार होती रही, उधर इस बीच में राममोहन और दूसरे अनुचर नाव को लट्ठों पर से खींचकर निकाल ले गए।

१२

बार-बार पुकारने पर भी जब कोई प्रहरी नहीं आया तो प्रतापादित्य जल्दी से उठकर बाहर आ गए और पुकारने लगे, "मंत्री! मंत्री!" उसी समय एक चाकर दौड़ा गया और मंत्री को अन्त:पुर में बुला लाया।

"मंत्री, प्रहरी सब कहां गए हैं?"

"बाहर के दरवाजे के सब प्रहरी भाग गए हैं।"

मंत्री ने देखा कि सिर पर संकट मंडरा रहा है, इसलिए उन्होंने राजा की बात का स्पष्ट और शीघ्र उत्तर दिया। जितना ही घुमाकर और देर से उत्तर दिया जाता है राजा उतने ही आगबबूला हो उठते हैं।

प्रतापादित्य ने पूछा, "और अन्त:पुर के प्रहरी?"

मंत्री ने कहा, "आते समय देखा कि वे बंधे पड़े हैं।"

मंत्री को रात की घटना का कुछ भी पता नहीं था। क्या हुआ है इसका कुछ अनुमान भी वे न कर सके। केवल इतना समझ सके कि अवश्य कोई भयंकर घटना घटी है। ऐसे समय महाराज से कुछ पूछना भी असम्भव ही है।

प्रतापादित्य ने एक के बाद एक प्रश्नों की झड़ी लगा दी, "रामचन्द्रराय कहां है? उदयादित्य कहां है? बसन्तराय कहां है?"

मंत्री ने धीरे-धीरे कहा, "मेरा ख्याल है कि अन्त:पुर में ही होंगे।"

राजा झुंझला उठे, "खयाली घोड़े तो मैं भी दौड़ा सकता हूं, फिर तुमसे पूछने की जरूरत क्या थी? जो खयाल किया जाता है वह हमेशा सच नहीं हुआ करता!"

मंत्री बिना कुछ बोले धीरे-धीरे बाहर चले गए। रमापति से उन्हें रात की सारी घटना का पता चला। जब रामचन्द्रराय के भागने की बात मालूम हुई तो वे विशेष रूप से चिन्तित हो उठे। मंत्री ने बाहर जाकर देखा तो रमाई भांड़ गुड़ीमुड़ी हुआ बैठा था। मंत्री को देखकर उसने कहा, "आइए मंत्री जाम्बुवान!" और उसने दांत निपोर

दिए। उसकी इस दांत-निपोरनी को रामचन्द्रराय के सभासद रसिकता कहते है, बीभत्सता नही। मत्री ने उसके इस आदरसूचक सम्भाषण को सुनकर कुछ नही कहा, उसकी ओर देखा तक नही। एक सेवक से बोले, "इसे ले चलो।" मंत्री ने सोचा कि इस समय इस निकम्मे को प्रतापादित्य के क्रोध के सामने खड़ा कर देना चाहिए। प्रतापादित्य के क्रोध की गाज किसी न किसी पर तो पडेगी ही। अच्छा हो, वह इस कदली-वृक्ष पर ही गिरे, जिससे बड़े-बड़े वृक्षों की रक्षा हो सके।

रमाई को देखते ही प्रतापादित्य एकदम आग हो उठे। विशेषकर जब उसने प्रतापादित्य को प्रसन्न करने के लिए दांत निपोरकर मटकते हुए हास्य-रस की बात करनी चाही तो राजा जब्त न कर सके। वे उठ खड़े हुए और अत्यन्त घृणापूर्वक बोले, "इस कीड़े को अभी यहा से निकालकर बाहर करो! इसे हमारे सामने लाने को किसने कहा था?"

प्रतापादित्य की घृणा के कारण ही उस समय रमाई के प्राण बच गए, क्योंकि घृणित व्यक्ति को मारने के लिए भी उसका स्पर्श करना पड़ता है। रमाई को उसी समय बाहर निकाल दिया गया।

मन्त्री ने कहा, "महाराज, राज-जा माता···"

प्रतापादित्य ने अधीरता से सिर हिलाते हुए कहा, "रामचन्द्रराय···"

मन्त्री ने कहा, "हा, वे कल रात राजधानी छोड़कर चले गए।"

प्रतापादित्य उठ खड़े हुए और बोले, "चले गए! प्रहरी सब कहां थे?"

मन्त्री ने पुन: कहा, "बाहरी दरवाजे के सब प्रहरी भाग गए।"

प्रतापादित्य ने मुट्ठी बांधकर कहा, "भाग गए! भागकर जाएगे कहा? जहा भी हो, खोजकर हाजिर करो। अन्तःपुर के प्रहरियो को इसी समय बुला लाओ!" मन्त्री आज्ञा का पालन करने चले गए।

रामचन्द्रराय जब नाव पर उतरे तो अंधेरा था। उदयादित्य, बसन्तराय, सुरमा और विभा उस रात फिर सो नहीं सके। विभा ने फिर कोई बात नहीं की, न आसू गिराए, वह अवसन्न होकर बिस्तरे पर पड़ रही। सुरमा पास बैठी उसके सिर पर हाथ फेरने लगी। उदयादित्य और बसन्तराय चुपचाप बैठे रहे। घर मे निस्तब्धता छाई रही। अन्त में थककर बसन्तराय बोल उठे, "विभा बिटिया, तुम कुछ

बोलती क्यों नहीं ?" और वे विभा के समीप जा बैठे। थोड़ी देर बाद वे फिर बोल उठे, "सुरमा, ओ सुरमा !" सुरमा ने मुंह उठाकर उनकी ओर देखा, लेकिन बोली कुछ नहीं। तब बूढ़े वसन्तराय बैठे-बैठे अपने गंजे सिर पर हाथ फेरने लगे। उन्हें किसी अनिर्दिष्ट विपत्ति की आशंका होने लगी। सुरमा ने उस अन्धकार में एक बार उदयादित्य के चेहरे की ओर देखा। वे दीवार से सिर टिकाए एकाग्र भाव से न जाने क्या सोच रहे थे। सुरमा की आंखों से आंसू बहने लगे। धीरे से उसने अपने आंसू पोंछ डाले कि कहीं विभा को पता न लग जाए।

जब सवेरा हो गया, चारों ओर प्रकाश भर गया, तब कहीं वसन्तराय के जी में जी आया। वे एक लम्बी सांस लेकर मानो जी उठे। उनके मन से अनिर्दिष्ट विपत्ति की आशंका दूर हुई। अब कहीं जाकर वे शान्त मन से सारे घटनाचक्र की मीमांसा कर सके। वे विभा के कमरे से उठकर चले गए। अन्तःपुर के द्वार पर जहां सीताराम बंधा पड़ा था, वहां आए। उससे बोले, "देख सीताराम, जब प्रताप पूछे कि तुझे किसने बांधा, तो तू मेरा नाम बताना। प्रताप को मालूम है कि कभी मैं बलिष्ठ था, वह तेरी बात पर विश्वास कर लेगा।"

सीताराम अभी तक यही सोच रहा था कि वह प्रतापादित्य के आगे क्या जवाब देगा। इस सम्बन्ध में उदयादित्य का नाम लेने के लिए उसका मन किसी भी तरह तैयार नहीं हो रहा था। वसन्तराय की बात पर वह तत्काल राज़ी हो गया। तब उन्होंने दूसरे प्रहरी के पास जाकर कहा, "भागवत, प्रताप जब पूछे तो कहना कि वसन्तराय ने तुझे बांधा था।"

सहसा भागवत का धर्मज्ञान अत्यन्त प्रबल हो उठा। वह झूठ बोलने के लिए तैयार न हुआ, क्योंकि उसे उदयादित्य पर बड़े ज़ोर का गुस्सा आ रहा था। उसने कहा, "आप मुझे ऐसा हुक्म न दें, इससे अधर्म होगा और मुझे पाप लगेगा।"

वसन्तराय अत्यन्त उद्विग्न हो उठे। उन्होंने व्याकुल होकर कहा, "भागवत, मैं तुझे समझाकर कह रहा हूं कि इस झूठ में कोई पाप नहीं। अभी तू मेरी बात मान ले, फिर मैं तुझे खुश कर दूंगा। यह ले, मेरे पास जो है वह सब ले ले और मेरा कहना मान ले।"

प्रहरियों को उसी समय बर्खास्त कर दिया। उनका अपराध यही था कि यदि कोई उन्हें बलपूर्वक बांध सकता है तो वे प्रहरी बनने आए ही क्यों ! इस अपराध के लिए उन्हें कोड़ों की सजा भी सुनाई गई।

उनके चले जाने के बाद प्रतापादित्य वसन्तराय के चेहरे की ओर देखकर वज्र-गम्भीर स्वर में बोले, "उदयादित्य का यह अपराध अक्षम्य है।" उन्होंने इस तरह कहा, मानो उदयादित्य का वह अपराध स्वयं वसन्तराय का ही हो, मानो उदयादित्य सामने खड़े हों और राजा उनकी भर्त्सना कर रहे हों, वसन्तराय का अपराध केवल यह है कि वे उदयादित्य को अपने प्राणों से भी अधिक चाहते हैं।

वसन्तराय ने कहा, "बेटा, उदय का तो इसमें कोई दोष नहीं।"

प्रतापादित्य ने आगबबूला होकर कहा, "दोष नहीं ! आप कहते हैं कि दोष नहीं ! तब मैं उसे और भी कड़ी सजा दूंगा। आप बीच-बचाव करने क्यों आए ?"

वसन्तराय को उदयादित्य का इतना अधिक पक्ष लेते देख प्रतापादित्य का मन उदय के प्रति और भी विषाक्त हो उठा। वसन्तराय यह सोचकर चुप हो गए कि कहीं मुझे सजा देने के लिए उदय को सजा न दे दी जाए।

थोड़ी देर बाद शांत होकर प्रतापादित्य ने कहा, "यदि मैं जानता कि उदयादित्य में कुछ भी मन का जोर है, उसका कोई मत है, कोई उद्देश्य और ध्येय है, जो करता है स्वयं अपने मन से करता है, कोई उसे फूंक मारकर उड़ाता नहीं, तो आज उसका बचना मुश्किल था। जब मैं उसे उड़ा हुआ देखता हूं तो नीचे की ओर यह भी ध्यान से देखता हूं कि फूंक कौन मार रहा है! इसीलिए तो उसे दण्ड देने की इच्छा नहीं होती। वह दण्ड के भी योग्य नहीं। किन्तु सुनिए, चचा साहब, यदि आपको दोबारा यशोहर आकर उदय से मिलते देखा, तो समझ लीजिए उसका जीना दूभर हो जाएगा !"

वसन्तराय बड़ी देर तक चुप बैठे रहे। फिर धीरे-धीरे उठकर बोले, "अच्छी बात है, प्रताप, मैं आज ही शाम चला जाऊंगा।"

वे बाहर निकल आए और लम्बी सांस लेकर चल दिए।

प्रतापादित्य ने निश्चय किया, जो भी उदयादित्य से प्रेम करते

हैं, जिनके भी वह कहे में रहता है, उन सबको उदयादित्य से अलग करना होगा। मन्त्री से बोले, "बहू को अब राजपुरी में रखना नही है, किसी भी बहाने उसे उसके बाप के घर भेज देना होगा !"

विभा से राजा को किसी प्रकार की आशका नही, कोई सन्देह नही; कुछ भी हो, वह है तो इसी घर की !

१३

वसन्तराय ने उदयादित्य के कमरे में आकर कहा, "बेटा, अब तुझसे मेरी कभी भेंट न होगी !" और यह कहते हुए उन्होंने उदय को कसकर छाती से लगा लिया।

उदय ने वसन्तराय का हाथ पकडकर कहा, "क्यो, दादा साहब ?"

वसन्तराय रो पडे। सब कुछ बतलाते हुए उन्होंने कहा, "बेटा, मैं तुझे इतना प्यार करता हू, यही तेरे लिए दुःख का कारण हो गया। यदि तू सुखी रहा तो मैं जीवन के ये अन्तिम दिन तुझे देखे बिना ही किसी तरह काट लूगा।"

उदयादित्य ने सिर हिलाकर कहा, "नही, यह कभी नही हो सकता। आपकी-मेरी भेंट होगी ही। कोई इसमें बाधा नही पहुचा सकता। यदि आप चले गए, दादा साहब, तो मैं बचूगा ?"

वसन्तराय ने व्याकुल होकर कहा, "प्रताप ने मेरा वध नही किया, तुझे मुझसे छीन लिया। बेटा, जब मैं चला जाऊ तो तू मेरे बारे में सोचना मत, यह समझ लेना कि वसन्तराय मर गया।"

उदयादित्य शयनकक्ष में सुरमा के पास गए। वसन्तराय विभा के समीप जाकर उसकी ठुड्डी पकडकर बोले, "विभा, मेरी बेटी, एक बार उठ। बूढे के इस सिर पर एक बार हाथ तो फेर दे !"

विभा दादा साहब के सिर को थाम पके बालो को चुनने लगी।

उदयादित्य ने सुरमा से सब बाते कही और बोले, "सुरमा, संसार में मेरे पास जो कुछ भी बचा है उसीको मुझसे छीनने के लिए षड्यन्त्र किया जा रहा है। कहीं तुम्हींको कोई मुझसे छीन न ले जाए !"

सुरमा ने उदयादित्य का कसकर आलिंगन किया और दृढतापूर्वक बोली, "एक यम को छोड़ और तो कोई ऐसा कर नहीं सकता।"

लेकिन स्वयं सुरमा के मन में बड़ी देर से ऐसी आशंका हो रही है। उसे लग रहा है कि एक कठोर हाथ उसके उदयादित्य को उसके पास से छीनने के लिए बढ़ता चला आ रहा है। वह अपनी पूरी शक्ति से उदयादित्य को मन ही मन आलिंगन में बांधे रही और अपने मन में कहती रही, 'मैं तुम्हें छोड़ूंगी नहीं, कोई मुझे तुमसे छुड़ा नहीं सकता।'

फिर उसने जोर से कहा, "मैंने बहुत देर से सोच रखा है कि कोई मुझे तुम्हारे पास से अलग नहीं कर सकता।" वह अपने मन में बल का संचय करना चाहती है, ऐसा बल जिससे वह उदयादित्य को अपनी दोनों बांहों में इस तरह जकड़ा रख सके कि कोई पार्थिव शक्ति उन्हें अलग न कर सके। इसलिए बार-बार उसी बात को दोहराकर वह मन को वज्र-बल से दृढ़ करने लगी।

उदयादित्य ने सुरमा के मुंह की ओर देखकर लम्बी सांस ली और बोले, "सुरमा, मुझे अपने कष्ट की तो कोई चिन्ता नहीं, परन्तु दादा साहब के दुःख की बात सोचकर कलेजा फटा जाता है।"

फिर वे बड़ी देर तक सुरमा को वसन्तराय के बारे में बतलाते रहे। उस रात उन्होंने वसन्तराय के अनेक किस्से सुरमा को सुनाए।

सुरमा ने कहा, "वाह, दादा साहब के क्या कहने! उनके जैसा आदमी दुनिया में दूसरा नहीं मिलेगा!"

फिर दोनों विभा के कमरे में गए। विभा बैठी दादा साहब के सिर से पके बाल चुन रही थी और वे उसे गाना सुना रहे थे। उदयादित्य को देखकर वसन्तराय ने हंसते हुए कहा, "देखो भैया, विभा मुझे छोड़ना ही नहीं चाहती। पता नहीं इसे मेरी ऐसी क्या आवश्यकता है! जो कभी दूध था वही अब मठा हो गया है। पगली विभा मठे से ही दूध की साध पुराना चाहती है। मेरे जाने की बात सुनकर रो रही है। पगली है न! मुझसे इसका रोना देखा नहीं जाता। देख विभा, यदि तू इस तरह रोती रही···" कहते-कहते वसन्तराय स्वयं रो पड़े।

वसन्तराय ने जब देखा कि कोई भी कुछ बोल नहीं रहा, तब वे व्याकुल हो उठे और अपने सितार की खूंटियां उमेठ बड़े ज़ोर से उसे बजाने लगे। लेकिन विभा की आंखों में आंसू देखकर उनके सितार

मत करो मेरी मुन्नी ! उसे तुम फिर अपने वश में कर लोगी औषध तो तुम्हारी आंखों में ही है, जरा अधिक मात्रा में प्रयोग करके देखो। यदि उससे काम न बने तो मै तुम्हें एक जड़ी देती हूं, उसे खिला देना।"

और वह उठकर एक सूखी-सी जड़ी ले आई। फिर उसने मातंगिनी से पूछा, "बता, तेरे राजमहल की क्या खबर है ?"

मातंगिनी धीरे से बोली, "सुनो दीदी, उस दिन हमारे राजा के जमाई आए थे। लेकिन वे जिस दिन आए उसी रात बिना किसीसे कुछ कहे, बिना कुछ बतलाए चले भी गए ! सच बात क्या है, जानती हो ? हमारी बहूरानी हैं न, उन्हें किसीका सुख फूटी आंखों नहीं सुहाता। जाने क्या मन्तर जानती हैं कि पति को भेड़ा बना रखा है उन्होंने··· लेकिन न बाबा, अब न कहूंगी ! कोई सुन लेगा तो कहेगा कि मातंगिनी राजमहल की बातें बाहर बकती फिरती है।"

मंगला बोली, "यहां दूसरा है ही कौन ? बात तो तेरे और मेरे बीच हो रही है, इसमें दोष और भय ही क्या ! हां, तो तेरी बहूरानी ने क्या किया ?"

"उन्होंने हमारी बिटिया रानी के खिलाफ जमाई राजा के आगे न जाने क्या जड़ दिया ! ऐसे कान भरे बहिना, कि जमाई राजा रातोंरात चले गए। बिटिया रानी बेचारी रोते-रोते हलकान हो गई। महाराज ने सुना तो बहुत खफा हुए। वे बहूरानी को श्रीपुर उनके बाप के घर भेजने को आमादा हो गए हैं।"

राजमहल के प्रत्येक दास-दासी का यह दावा था कि रामचन्द्रराय के पलायन का वास्तविक कारण उसे सही-सही मालूम है, लेकिन मज़ा यह है कि किसी एक की बात किसी दूसरे से नहीं मिलती थी।

मंगला ने कहा, "तुम अपनी महारानी से कहना कि बहूरानी को बाप के घर भेजने की कोई जरूरत नहीं। मंगला ऐसी दवाई दे सकती है जिससे राजकुमार का मन उनकी ओर से हमेशा के लिए फिर जाएगा।"

यह कहकर वह खिलखिलाकर हंसने लगी। मातंगिनी ने कहा, 'यह तो बहुत अच्छी बात है। जरूर कहूंगी।"

फिर मंगला ने पूछा, "क्या युवराज तुम्हारी बहूरानी को बहुत

चाहते हैं ?"

"अब तुमसे क्या कहूं ! युवराज उन्हें इतना चाहते हैं कि एक क्षण भी उन्हें देखे बिना रह नहीं सकते। 'तू' कहकर पुकारते ही युवराज दुम हिलाते हुए आ पहुंचते हैं।"

"अच्छी बात है। मैं दवा दूंगी। क्या दिन के समय भी युवराज उन्हींके पास रहते हैं ?"

"हां।"

मंगला कह उठी, "हाय राम, कितनी शरम की बात है ! अच्छा, वे युवराज से क्या कहती और क्या करती हैं, कुछ पता है ?"

"नहीं बहिन, सो तो मुझे कुछ मालूम नहीं।"

"मुझे एक बार महल में ले जा सको तो मैं चलकर देख आऊं कि क्या बात है !"

मातंगिनी ने कहा, "क्यों बहिन, पराई पीर से तुम्हारी आंख क्यों फूटती है ? तुम्हें इतना सिरदर्द क्यों ?"

मंगला ने कहा, "बताया न, चलकर एक बार देख लूं, तभी न जान सकूंगी कि किस मंत्र से उन्होंने युवराज को वश में कर रखा है और मेरा मंत्र चल भी सकेगा या नहीं !"

मातंगिनी उठते हुए बोली, "तो अच्छी बात है। अब चलती हूं।" वह डलिया उठाकर चल दी।

मातंगिनी के जाने के बाद मंगला फुफकारने लगी। आंखें निकाले दांत किटकिटाती हुई वह न जाने क्या बड़बड़ाती रही।

१५

बसन्तराय चले गए। उस समय सन्ध्या हो रही थी। विभा राज-महल की छत पर चढ़ गई। वहां से उसने देखा, दादा [illegible] की पालकी चली जा रही है। उन्होंने एक बार पालकी में से सिर निकालकर महल की ओर देखा। फिर पालकी आंखों से ओझल हो गई, लेकिन विभा वहीं खड़ी उसी ओर देखती रही। तारे निकल आए, दीये जल उठे, पथ जनशून्य हो गया, लेकिन विभा चुपचाप वहीं देखती ही रही। सुरमा ने उसे सब जगह ढूंढा और जब वह कहीं न मिली तो छत पर पहुंची।

विभा को गले लगाकर उसने स्नेह-भरे स्वर में पूछा, "क्या देख रही हो, विभा ?" विभा ने दीर्घ निश्वास लेकर कहा, "पता नहीं क्या देख रही थी !" आजकल वह ऐसी ही खोई-खोई और शून्यमनस्क रहने लगी है। इतने बड़े महल में भी वह बेघर और बेदर है। उसके दादा साहब थे, वे भी चले गए। चन्द्रद्वीप से अब उसे कौन लेने आएगा ? शायद राममोहन आए, परन्तु पता नहीं इस समय वह कहां है ! इस दुःख में भी थोड़ा-सा सुख बचा है। उसके ऐसे प्रेम करनेवाले भैया हैं, प्राणों से प्यारी भाभी हैं। लेकिन उनपर भी विपद की छाया मंडराने लगी है। जिस महल की दीवारों को भेदकर दारुण भय अदृश्य रूप से मंडरा रहा हो उस महल को वह अपना घर कह ही कैसे सकती है !

उदयादित्य ने सुना कि नौकरी से बर्खास्त किए जाने के बाद सीताराम की दुर्दशा हो रही है। आमदनी का कोई ज़रिया नहीं और खर्चे में एक पाई की भी कमी नहीं। पैसा पास में नहीं और खाने-वालों की कोई कमी नहीं। विधवा बहिन, बूढ़ी मां और अविवाहित कन्या का बोझ माथे पर। स्वयं शौकीन आदमी। यह सब सुनकर राजकुमार दयार्द्र हो उठे और उन्होंने उसकी मासिक वृत्ति निर्धारित कर दी। भागवत की भी इसी प्रकार सहायता की।

जब प्रतापादित्य को राजकुमार के इस आचरण का पता चला तो वे बहुत बिगड़े। इधर वे युवराज के हर काम पर निगाह रखने लगे थे। उन्हें बुलाकर राजा ने डांटते हुए कहा, "क्या तुम ऐसा समझते हो कि मैंने सीताराम और भागवत को खज़ाने में पैसा न होने के कारण बर्खास्त किया है ? फिर तुमने उनकी सहायता क्यों की ?"

उदयादित्य ने धीरे से कहा, "मैं दोषी हूं। आपने उन्हें दण्ड देकर मुझे दण्डित किया है। यही सोचकर मैं उन्हें हर महीने दण्डस्वरूप रुपया दे रहा हूं।"

लेकिन प्रतापादित्य अपनी ही बात कहते गए, "मैं हुक्म देता हूं कि आगे से तुम उनकी एक छदाम की भी मदद नहीं करोगे।"

उदयादित्य ने हाथ जोड़कर कहा, "पिताजी, यह तो मुझे और भी कड़ा दण्ड दिया जा रहा है। मैंने भला ऐसा कौन-सा अपराध किया कि मेरे कारण उन लोगों को भूखों मरना पड़ रहा है ? मेरा

जो कुछ है वह सब आपकी ही कृपा का प्रसाद है। आपकी कृपा से मेरी थाली में अन्न का अभाव नहीं, परन्तु उन लोगों को मेरे ही कारण अन्न से वंचित रहकर मारे-मारे फिरना पड़ रहा है।"

जब उदयादित्य अपनी बात पूरी कर चुके तो राजा बोले, "सुनो उदय, अब तुम मेरी बात सुनो। मैंने भागवत और सीताराम को बर्खास्त किया। अब जो कोई उनकी सहायता करता है वह मेरे विरुद्ध आचरण करता है।"

उदयादित्य चुपचाप सुरमा के पास लौट आए और उन्होंने उसे सारा किस्सा कह सुनाया। तब बोले, "सीताराम की मां भूखी पड़ी है, बच्चों को दूध नहीं मिलता। पिताजी के भय से कोई उन्हें नौकर नहीं रख सकता। अब यदि मैं भी विमुख हो जाऊं तो संसार में उनका सहायक है ही कौन? सहायता मैं अवश्य करूंगा, परिणाम का मुझे ज़रा भी भय नहीं; लेकिन पिताजी को नाराज़ भी नहीं करना चाहता, इसलिए गुप्त रूप से मदद करने की कोई तरकीब सोचनी होगी सुरमा!"

सुरमा ने उन्हें दिलासा देते हुए कहा, "आप चिन्ता न कीजिए, मैं सारी व्यवस्था कर दूंगी, आप सब मुझपर छोड़ दीजिए।"

सुरमा ने अपनी एक विश्वस्त दासी के हाथ सीताराम की मां और भागवत की स्त्री के पास सहायता भेजने का बन्दोबस्त कर दिया। दासी विश्वस्त थी, लेकिन मंगला से कहने में उसे कोई हर्ज नहीं दिखाई दिया। मंगला से यह बात राजा को मालूम हो गई।

१६

इस गुप्त सहायता की बात मालूम होने पर राजा ने अन्तःपुर में आदेश दे दिया कि सुरमा को अपने बाप के घर जाना होगा। उदयादित्य ने तो छाती कड़ी कर ली, लेकिन विभा रोती हुई भाभी के गले से लिपट गई और बोली, "तुम चली जाओगी तो मैं इस श्मशानपुरी में कैसे रहूंगी?"

सुरमा ने विभा की ठुड्डी पकड़कर उसका मुंह चूमते हुए कहा, "मैं जाऊंगी क्यों, मेरा तो सर्वस्व यहीं है।"

बात यह थी कि प्रतापादित्य का आदेश सुनते ही सुरमा ने साफ-साफ कह दिया था कि मैं तो पिता के घर जाने का कोई कारण नहीं देखती। वहां से मुझे कोई बुलाने नहीं आया, मेरे पति भी नहीं चाहते कि मैं जाऊं; इसलिए मैं तो नैहर जाना आवश्यक नहीं समझती।

प्रतापादित्य ने सुना तो जल-भुनकर खाक हो गए। बहुत सोचने पर भी उन्हें कोई रास्ता दिखाई नहीं दिया। सुरमा को घर से ज़बर्दस्ती तो निकाला नहीं जा सकता था। अन्तःपुर में बल-प्रयोग कैसे करते! उन्होंने रानी को बुलाकर कहा, "सुरमा को बाप के घर भेज दो!"

रानी ने कहा, "मगर यह भी तो सोचिए कि उदय का क्या होगा!"

राजा ने झुंझलाकर कहा, "उदय बच्चा तो है नहीं। और फिर मैं राजकाज की सहूलियत के लिए सुरमा को उसके बाप के यहां भेज रहा हूं; यही मेरा आदेश है।"

रानी ने उदय को बुलाकर कहा, "बेटा उदय, सुरमा को उसके बाप के घर भेजना होगा।"

उदय ने पूछा, "क्यों मां, उसने ऐसा कौन-सा अपराध किया है?"

रानी ने जवाब दिया, "सो तो मैं जानती नहीं, बेटा, मैं औरत भला जानूंगी भी कैसे! बहू को उसके मायके भेजने से राजकाज में क्या सहूलियत होगी, इसे महाराज ही जानें।"

तब उदय ने कहा, "मां, मुझे दुःख देकर राजकाज की ऐसी कौन-सी उन्नति होगी? आरम्भ से दुःख ही दुःख सहता रहा हूं। सुख मुझे मिला ही क्या है? और सुरमा भी कौन सुखी है! सब उसे दुरदुराते रहते हैं। अब राजमहल से निकाले जाने की नौबत आ गई। क्या इतने बड़े राजमहल में उसके लिए एक कोना भी नहीं? क्या वह तुम्हारी कोई भी नहीं होती, मां? यदि ऐसी बात है तो मां मैं भी यहां नहीं रहूंगा। मां, मुझे भी निकाल दो!"

रानी रोते-रोते बोलीं, "क्या जानूं बेटा! महाराज कब क्या करना चाहते हैं, कुछ समझ में नहीं आता। लेकिन इतना अवश्य कहूंगी कि बहू भी कोई दूध की धुली हुई नहीं है। जिस दिन से इस घर में आई है, किसीको क्षण-भर के लिए भी शान्ति नहीं। कुछ दिन बाप के घर रह आए, तो फिर देखना, घर का रूप ही कैसा बदल जाता है।"

उदयादित्य ने कोई जवाब नहीं दिया। कुछ देर चुप बैठे रहे और तब उठकर वहा से चले गए।

रानी रोती हुई राजा के पास पहुंची और बोली, "महाराज, सुरमा को भेज दिया तो मेरा लाल भी बचेगा नही! उस बेचारे का कोई दोष नहीं। उस डायन ने न जाने कौन-सा मन्तर फूक दिया है।"

राजा ने अतिशय क्रुद्ध होकर कहा, "यदि सुरमा को भेजा नही गया तो मैं उदयादित्य को जेल मे डाल दूगा।"

रानी वहा से सुरमा के पास पहुची और लगी उसे कोसने, "कलमुही, तूने मेरे लाल को क्या कर दिया! मेरा लाल मुझे लौटा दे। जब से तू आई है, तूने क्या सर्वनाश नहीं किया? क्या अन्त मे उसे जेल मे सडाकर ही दम लेगी?"

सुरमा के काटो तो खून नही। सिहरकर बोली, "मेरी वजह से उन्हे जेल मे सडना होगा? यह मैं क्या सुन रही हू? यदि ऐसी बात है तो लीजिए, मैं इसी क्षण जाती हू।" सुरमा ने विभा से जाकर सब बातें कही और गले मे लगाकर बोली, "विभा, यदि यहा से गई तो फिर लौटने नही पाऊगी, यहा मुझे कोई आने नही देगा।"

विभा रोती हुई सुरमा से लिपट गई। सुरमा वही बैठ गई। अनन्त भविष्य के सीमाहीन प्रान्तर से एक बात बार-बार आकर उसके मन-प्राणो को विद्ध करने लगी—अब कुछ नही रहा, सब समाप्त हो गया। अब लौटकर आना नही होगा। सुरमा की छाती फटने लगी, माथा चकराने लगा, आसू तक सूख गए। उदयादित्य के आने पर सुरमा उनके पावों से लिपट गई और उन पावो को छाती से लगाए फूट-फूटकर रोने लगी। सुरमा इस तरह कभी रोई नही थी। आज उसका बलिष्ठ हृदय खण्ड-खण्ड हो गया। उदयादित्य ने उसका सिर अपनी गोद मे रख लिया और पूछा, "क्या हुआ है, सुरमा?" सुरमा पति के मुह की ओर देखकर और भी जोर से रो पडी। "अब इस मुख को मैं कभी देख नही पाऊगी! सन्ध्या होगी, तुम खिडकी मे आकर बैठोगे, पर मैं पास न हूगी! घर में दीप जलेगा, तुम इस द्वार के निकट आकर खड़े होगे, पर मैं हसती हुई तुम्हारा हाथ पकड़कर ले नहीं जाऊगी! जब तुम यहा होगे, तब मैं कहां हूं"

उसके इस 'कहां' में कितनी निराशा और वियोग की कितनी करुण कातर ध्वनि थी! अभी तो आंखों ही आंखों में मिलन हो जाता है, पर तब बीच में कितनी दूरी होगी, कितना व्यवधान होगा! और जब समाचार मिलने में विलम्ब होगा, तब तो वह दूरी और भी कितनी अधिक हो जाएगी! और जब प्राणान्तकारी इच्छा होने पर भी उन्हें प्रियतम की झलक नहीं मिलेगी, एक क्षण के लिए भी उनके दर्शन न होंगे, तब···तब···

१७

आरम्भ में रुक्मिणी का उल्लेख हुआ है। मंगला ही वह रुक्मिणी है, जो नाम बदलकर यशोहर नगर के एक छोर पर आ बसी है। रायगढ़ उसने छोड़ दिया है। साधारण नीच प्रकृति की स्त्रियों की भांति वह इंद्रियासक्त, ईर्ष्यालु और अधिकार-लोलुप है। हंसना-रोना उसके बायें हाथ का खेल है। जब जैसी आवश्यकता होती है, दोनों का या दोनों में से किसी एक का उपयोग करती है। क्रुद्ध होने पर वह इतनी उग्र और हिंसक हो उठती है मानो फाड़ ही खाएगी। ईर्ष्या उसके मन में सांप की तरह फन फैलाए फुफकारने लगती है। वह तरह-तरह के व्रत और तान्त्रिक अनुष्ठान करती रहती है। उसकी परम अभिलाषा यह है कि जब युवराज उदयादित्य सिंहासन पर बैठें तो वह उनके हृदय और यशोहर राज्य पर एकसाथ शासन करे। इसके लिए उसने अथक परिश्रम कर राजमहल के सब दास-दासियों से मेल कर उन्हें अपना बना लिया है। राजमहल की छोटी-बड़ी सब खबरें उसे मिलती रहती हैं। प्रतापादित्य और सुरमा उसकी राह के दो बड़े रोड़े हैं। उनकी मृत्यु के लिए उसने अनेक अनुष्ठान किए, परन्तु अभी तक एक में भी सफलता नहीं मिली। रोज प्रतीक्षा करते-करते उसकी अधीरता इतनी अधिक बढ़ गई है कि अब मंत्र-तंत्र और अनुष्ठान के बदले वह चाहती है, एक बार वे उसके हाथ पड़ जाएं और वह हाथों का जौहर दिखाकर अपने मन की साध पूरी कर ले।

रुक्मिणी ने जब यह देखा कि सुरमा के प्रति राजा और रानी की नाराज़गी बढ़ते-बढ़ते उसे राजमहल से निकाले जाने की नौबत आ

गई है, तो वह बड़ी प्रसन्न हुई। लेकिन फिर भी जब सुरमा नहीं गई तो उसे विदा करने के सहज उपाय का उसने अवलम्बन किया।

रानी ने जब सुना कि मंगला नाम की एक विधवा मंत्र-तंत्र और अनुष्ठान में बड़ी प्रवीण है, तो उन्होंने उसकी सहायता से युवराज के मन को सुरमा की ओर से विमुख करने का निश्चय किया। उन्होंने मातंगिनी को गुप्त रूप से मंगला के पास दवाई लाने के लिए भेज दिया।

मंगला तरह-तरह की जड़ी-बूटियां ले, उन्हें भिगो और इमामदस्ते में कूट, कपड़छन कर मंत्र फूंकते हुए विष तैयार करने में लग गई। उसे काम समाप्त करने में पूरे पांच दिन लगे। वास्तव में काम तो एक ही दिन का था, किन्तु सुरमा के मरते समय युवराज के मन में दया जाग्रत न हो, इसलिए मंत्र फूंकने में मंगला को पांच दिन लग गए।

रानी ने राजा की अनुमति लेकर सुरमा को कुछ दिन और राजमहल में रहने की छूट दे दी। सुरमा चली जाएगी, इसलिए विभा आजकल उसके साथ छाया की भांति लगी रहती है। विभा को अपने चारों ओर अंधकार ही अंधकार दिखाई देता है। सुरमा की हालत तो और भी शोचनीय है। उसे अपने चारों ओर शून्य के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं दिखाई देता। वह उदयादित्य के पांवों के पास पड़ी रहती है, उनकी गोद में मुंह छिपाकर लम्बी सांसें लिया करती है चुप पड़ी उनके मुंह की ओर एकटक देखती रहती है। विभा से कहती है, "विभा बहिन, मैं अपना सर्वस्व तुम्हें सौंपे जा रही हूं।" और दोनों हाथों में मुंह छिपाकर फफक उठती है।

दुपहर होने को है। कल सवेरे सुरमा चली जाएगी। उसकी गृहस्थी में जो कुछ भी था वह सब उसने विभा को सौंप दिया। उदयादित्य प्रशान्त और दृढ़प्रतिज्ञ बैठे सोच रहे हैं। उन्होंने निश्चय कर लिया है कि सुरमा को यहां नहीं रहने दिया जाएगा तो वे भी चले जाएंगे।

शाम होते-होते सुरमा की हालत खराब होने लगी। उसके पैर कांपने लगे, सिर में चक्कर आने लगे, खड़ा रहना मुश्किल हो गया। वह शयनगृह में जाकर पड़ गई और बोली, "विभा, विभा, उन्हें जल्दी बुलाओ, अब देर नहीं है।"

उदयादित्य के द्वार पर आते ही सुरमा बोल उठी "आर्य

उसके इस 'कहां' में कितनी निराशा और वियोग की कितनी करुण कातर ध्वनि थी ! अभी तो आंखों ही आंखों में मिलन हो जाता है, पर तब बीच में कितनी दूरी होगी, कितना व्यवधान होगा ! और जब समाचार मिलने में विलम्ब होगा, तब तो वह दूरी और भी कितनी अधिक हो जाएगी ! और जब प्राणान्तकारी इच्छा होने पर भी उसे प्रियतम की झलक नहीं मिलेगी, एक क्षण के लिए भी उनके दर्शन न होंगे, तब···तब···

१७

आरम्भ में रुक्मिणी का उल्लेख हुआ है। मंगला ही वह रुक्मिणी है, जो नाम बदलकर यशोहर नगर के एक छोर पर आ बसी है। रायगढ़ उसने छोड़ दिया है। साधारण नीच प्रकृति की स्त्रियों की भांति वह इंद्रियासक्त, ईर्ष्यालु और अधिकार-लोलुप है। हंसना-रोना उसके बायें हाथ का खेल है। जब जैसी आवश्यकता होती है, दोनों का या दोनों में से किसी एक का उपयोग करती है। क्रुद्ध होने पर वह इतनी उग्र और हिंसक हो उठती है मानो फाड़ ही खाएगी। ईर्ष्या उसके मन में सांप की तरह फन फैलाए फुफकारने लगती है। वह तरह-तरह के व्रत और तान्त्रिक अनुष्ठान करती रहती है। उसकी परम अभिलाषा यह है कि जब युवराज उदयादित्य सिंहासन पर बैठें तो वह उनके हृदय और यशोहर राज्य पर एकसाथ शासन करे। इसके लिए उसने अथक परिश्रम कर राजमहल के सब दास-दासियों से मेल कर उन्हें अपना बना लिया है। राजमहल की छोटी-बड़ी सब खबरें उसे मिलती रहती हैं। प्रतापादित्य और सुरमा उसकी राह के दो बड़े रोड़े हैं। उनकी मृत्यु के लिए उसने अनेक अनुष्ठान किए, परन्तु अभी तक एक में भी सफलता नहीं मिली। रोज प्रतीक्षा करते-करते उसकी अधीरता इतनी अधिक बढ़ गई है कि अब मंत्र-तंत्र और अनुष्ठान के बदले वह चाहती है, एक बार वे उसके हाथ पड़ जाएं और वह हाथों का जौहर दिखाकर अपने मन की साध पूरी कर ले।

रुक्मिणी ने जब यह देखा कि सुरमा के प्रति राजा और रानी की नाराजगी बढ़ते-बढ़ते उसे राजमहल से निकाले जाने की नौबत आ

गई है, तो वह वहाँ प्रसन्न हुई। लेकिन फिर भी जब सुरमा नहीं गई तो उसे विदा करने के सहज उपाय का उसने अवलम्बन किया।

रानी ने जब सुना कि मंगला नाम की एक विधवा मंत्र-तंत्र और अनुष्ठान में बड़ी प्रवीण है, तो उन्होंने उसकी सहायता से युवराज के मन को सुरमा की ओर से विमुख करने का निश्चय किया। उन्होंने मातंगिनी को गुप्त रूप से मंगला के पास दवाई लाने के लिए भेज दिया।

मंगला तरह-तरह की जड़ी-बूटियां ले, उन्हें भिगो और इमामदस्ते में कूट, कपड़छन कर मंत्र फूंकते हुए विष तैयार करने में लग गई। उसे काम समाप्त करने में पूरे पांच दिन लगे। वास्तव में काम तो एक ही दिन का था, किन्तु सुरमा के मरते समय युवराज के मन में दया जाग्रत् न हो, इसलिए मंत्र फूंकने में मंगला को पांच दिन लग गए।

रानी ने राजा की अनुमति लेकर सुरमा को कुछ दिन और राजमहल में रहने की छूट दे दी। सुरमा चली जाएगी, इसलिए विभा आजकल उसके साथ छाया की भांति लगी रहती है। विभा को अपने चारों ओर अंधकार ही अंधकार दिखाई देता है। सुरमा की हालत तो और भी शोचनीय है। उसे अपने चारों ओर शून्य के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं दिखाई देता। वह उदयादित्य के पांवों के पास पड़ी रहती है, उनकी गोद में मुंह छिपाकर लम्बी सांसें लिया करती है। चुप पड़ी उनके मुंह की ओर एकटक देखती रहती है। विभा से कहती है, "विभा बहिन, मैं अपना सर्वस्व तुम्हें सौंपे जा रही हूं।" और दोनों हाथों में मुंह छिपाकर फफक उठती है।

दुपहर होने को है। कल सवेरे सुरमा चली जाएगी। उसकी गृहस्थी में जो कुछ भी था वह सब उसने विभा को सौंप दिया। उदयादित्य म्लान और दृढ़प्रतिज्ञ बैठे सोच रहे हैं। उन्होंने निश्चय कर लिया है कि सुरमा को यहां नहीं रहने दिया जाएगा तो वे भी चले जाएंगे।

शाम होते-होते सुरमा की हालत खराब होने लगी। उसके पैर कांपने लगे, सिर में चक्कर आने लगे, खड़ा रहना मुश्किल हो गया। वह शयनगृह में जाकर पड़ गई और बोली, "विभा, विभा, उन्हें जल्दी बुलाओ, अब देर नहीं है।"

उदयादित्य के द्वार पर आते ही सुरमा बोल उठी, "आओ, आओ!

१८

क्या सुरमा नहीं रही ? लेकिन विभा को ऐसा नहीं लगता । उसे विश्वास नहीं होता कि सुरमा नहीं रही । उसे यही लगता है मानो सुरमा कहीं छिपी खड़ी है और अभी निकल आएगी । विभा सारे घर में, घर के एक-एक कमरे में सुरमा को खोजती फिरती है। जूड़ा बांधते समय वह इस आशा में चुपचाप बैठी रहती है कि अभी सुरमा आएगी और उसका जूड़ा बांध देगी। लेकिन सांझ हो आती है, रात घिरने लगती है, और सुरमा फिर भी नहीं आती । वह आएगी नहीं तो जूड़ा भी आज नहीं बंधेगा ! और विभा का जूड़ा बिना बंधा ही रह जाता है।

आज विभा कितनी मलिन और उदास है ! वह कितना रोई है, तब भी सुरमा क्यों नहीं आती ? ऐसा तो वह कभी करती नहीं थी। विभा के उदास होते ही वह आप पहुंचती, उसे गले से लगा लेती और उसके चेहरे की ओर देखने लगती। और आज—आज तो वह दहाड़ें मार डालने पर भी आने की नहीं !

उदयादित्य की तो आधी शक्ति और आधे प्राण ही चले गए। प्रत्येक कार्य में जो उनकी आशा थी, उत्साह था, जिसका परामर्श उनका एकमात्र सहारा था, जिसकी हंसी उनका एकमात्र पुरस्कार थी, वही चली गई । वे अपने शयनगृह में जाते, कुछ सोचते रहते, चारों ओर देखते रहते, पर कहीं कोई नहीं ! फिर वे धीरे-धीरे उस खिड़की के निकट आते और वहां बैठ जाते ; जहां सुरमा बैठी थी वह जगह खाली ही रहती । आकाश में वही चांदनी, सामने वही कानन, वही हवा—उदयादित्य सोचते, क्या ऐसी सांध्य-वेला में सुरमा आए बिना रह पाएगी ? सहसा उन्हें लगता मानो सुरमा बोली हो । वे चौंक पड़ते । यह असम्भव प्रतीत होते हुए भी वे एक बार चारों ओर देखते, बिछौने के पास जाते और देखते कि कोई है या नहीं । आजकल बिना कुछ किए ही वे थक जाते हैं । थके पावों से शयनगृह के द्वार पर आकर खड़े हो जाते हैं, मन में यह आशा लिए हुए कि अभी द्वार खुलेगा और सुरमा उस खिड़की में बैठी दिखाई देगी। लेकिन दिखाई देती है अकेली विभा, उदास चेहरा लिए, इधर-उधर निरुद्देश्य भटकते [illegible] रह जाते

प्राण हाहाकार कर उठते हैं। वे विभा को अपने पास बुलाते हैं, प्यार करते हैं, स्नेह की बातें करते हैं, जिन्हें सुनते-सुनते वह अपने भैया का हाथ पकड़कर रो उठती है और उदयादित्य की आंखें भी भर आती हैं।

एक दिन उदयादित्य ने विभा से कहा, "विभा, अब तेरा यहां रहा ही कौन? तुझे तेरी ससुराल भेजने की व्यवस्था कर दूं? बोल बहिन, बता, मुझसे शरम कैसी?"

विभा चुप रही, कुछ न बोली। भला यह भी कोई पूछने की बात है! बाप के घर अब वह एक दिन भी रहना नहीं चाहती। लेकिन वहां से उसे कोई बुलाने जो नहीं आया! क्यों नहीं आया!

उदयादित्य ने पिता से इस सम्बन्ध में बात की। उन्होंने कहा, "विभा को ससुराल भेजने में मुझे कोई आपत्ति नहीं। लेकिन विभा के लिए उनके मन में आदर और प्रेम होता तो वे स्वयं उसे विदा कराने के लिए किसीको भेजते। हमें इतना परेशान होने की जरूरत नहीं।"

रानी विभा को देखकर रोती रहती हैं। सधवा बेटी का वैधव्य क्या देखा जा सकता है! विभा के करुण मुख को देखकर उनके हृदय में शूल-सा चुभता रहता है। जमाई से उन्हें कोई शिकायत नहीं। उन्हें वे मन ही मन चाहती हैं। एक बार लड़कपन हो गया तो उसके लिए इतनी कड़ी सजा उन्हें जरा भी नहीं सुहाती। उन्होंने महाराज के पास जाकर विनीत स्वर में कहा, "महाराज, विभा को ससुराल भेज दीजिए।" महाराज क्रुद्ध हो उठे, "यह बात मैं कई बार सुन चुका हूं! मुझे ज़्यादा दिक मत करो। जब वे विभा को भीख मांगते हुए आएंगे, तभी वह उन्हें मिलेगी।" रानी ने कहा, "लड़की ससुराल नहीं भेजी तो लोग क्या कहेंगे?" महाराज ने गरजकर कहा, "और प्रतापादित्य ने स्वयं ही लड़की को ससुराल भेज दिया और रामचन्द्रराय ने लौटा दिया तो लोग क्या कहेंगे?"

रानी रोती हुई लौट गई।

१९

मान-अपमान के प्रति राजा रामचन्द्रराय की अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि रहती है। एक बार उनकी पालकी देखकर दो जुलाहों ने उठकर अभ्य-

थंना नहीं की तो उन्होंने आसमान सिर पर उठा लिया। एक दिन कुछ बच्चे मिट्टी के ढेर को सिंहासन बनाए राजा, मन्त्री और राजसभा का खेल खेल रहे थे। राजा ने उनके अभिभावकों को बुलाकर वह खबर ली कि बेचारों को छठी का दूध याद आ गया।

आज उनके सामने एक गरीब डरपोक अपराधी खड़ा है। वह गरीब मुसीबत का मारा प्रतापादित्य और रामचन्द्रराय के सम्बन्धों के बारे में अपने मित्रों के बीच चर्चा कर बैठा। उसके किसी शत्रु ने राजा के आगे चुगली कर दी। राजा आगबबूला हो उठे और उसे देश करने का हुक्म हुआ। अब विचार हो रहा है कि उसे फांसी दी जाए या निर्वासित किया जाए।

राजा गरजे, "क्यों बे, तेरी यह मजाल !"

वह गिड़गिड़ाया, "कृपानाथ, मैंने तो कुछ नहीं किया !"

मंत्री ने डपटा, "पाजी, प्रतापादित्य से हमारे महाराज की तुलना करता है !"

दीवानजी ने फरमाया, "साले जानता नहीं—कहां राजा भोज, कहां गंगू तेली ! जब प्रतापादित्य का बाप गद्दीनशीन हुआ तो उसने राजतिलक के लिए हमारे महाराज के स्वर्गीय पितामह से प्रार्थना की थी, तो उन्होंने अपने बायें पैर की छिगुली से उसका तिलक कर दिया था !"

रमाई भाड़ यह मौका क्यों चूकता ! वह बोला, "विक्रमादित्य का बेटा प्रतापादित्य—राजा हुए कुल दो पीढ़ी हुई। प्रताप का बाप था केंचुआ, उसका बेटा हुआ जोंक। उस जोंक बेटे ने माथा पीट-पीटकर उसे सूप बना दिया है और सांप की तरह फुफकारना सीख गया है। हमें राजसभा में भड़ैती करते पीढ़ियां बीत गईं। हम सपेरे भला सांप और जोंक को नहीं पहचानेंगे !"

राजा रामचन्द्रराय सुनकर परम सन्तुष्ट हुए और मुस्कराते हुए हुक्का गुड़गुड़ाने लगे। आजकल प्रतिदिन राजसभा में प्रतापादित्य पर आक्रमण होता है। प्रतापादित्य पर शब्दभेदी वचन-बाण बरसाते हुए जब सेनानियों के तरकश खाली हो जाते हैं, तभी सभा भंग होती है।

अन्त में जब अपराधी बहुत रोने-धोने लगा, तो रामचन्द्रराय ने कहा, "अच्छा, जा, इस बार छोड़ देते हैं, आगे से सावधान रहना।"

सभा बर्खास्त हुई, केवल मन्त्री और रमाई भांड़ रह गए। प्रतापादित्य की बात फिर होने लगी। रमाई ने कहा, "आप तो चले आए, उधर युवराज बेटा मुसीबत में पड़ गए। बाप चाहता है कि कन्या विधवा हो जाए तो उसकी चूड़ियां और कंगन बेचकर राजकोष की वृद्धि की जाए। बेटे ने एतराज़ किया तो आ गई छोकरे की शामत!"

राजा हंसने लगे, बोले, "अच्छा!"

मंत्री ने कहा, "हुजूर, सुना है कि प्रतापादित्य मारे अफसोस के मरा जा रहा है। लड़की को कैसे ससुराल भेजा जाए, इस सोच में उसने खाना-सोना तक छोड़ दिया है!"

राजा ने कहा, "अच्छा, यह बात है!" वे बहुत हंसे। उन्हें मज़ा आया, ज़ोर-ज़ोर से हुक्का गुड़गुड़ाने लगे।

मंत्री ने कहा, "पर मैं कहता हूं कि लड़की को ससुराल भेजने की ज़रूरत ही क्या है! रखे रहो अपने घर। महाराज ने तुम्हारे यहां शादी कर तुम्हारी सात पीढ़ियों का उद्धार कर दिया। अब उसे लाकर क्या अपनी हेठी करें? क्यों रमाई महाराज?"

रमाई ने हामी भरी, "बेशक! बेशक! महाराज ने कीचड़ में पांव रखा, तो यह तो कीचड़ का, उसके दादा, परदादा, और लकड़-दादा का सौभाग्य हुआ। परन्तु घर में प्रवेश करते समय तो पांव धोकर कीचड़ को छुड़ाकर ही आना होगा न!"

इस प्रकार प्रतापादित्य के साथ उदयादित्य और विभा पर भी वाग्बाणों की बौछार होती है। विभा के प्रति रामचन्द्रराय के मन में आसक्ति का भाव अब भी था। उस रात जब वह रो रही थी, उसके सौन्दर्य, ज्योत्स्नामंडित मुख, उसके अर्ध-अनावृत वक्षस्थल को देख रामचन्द्रराय मोहित हो गए थे। उसे छाती से लगा उन्होंने चूम लिया था। उसी समय दरवाज़ा खटका और विपत्ति का संवाद सुनने को मिला। रामचन्द्रराय की वासना का प्रथम उच्छ्वास अतृप्त ही रह गया। वही अतृप्त कामना तृषाकुल होकर रामचन्द्रराय की स्मृति पर अब तक अधिकार किए हुए थी। लेकिन वह स्थायी प्रेम का भाव नहीं था। रामचन्द्रराय के लघु और संकीर्ण हृदय में वह भी सम्भव नहीं था। वह था शौकीन मन का विलास-सामग्री के प्रति सहसा आकर्षण।

शायद उसी आकर्षण के कारण रामचन्द्रराय के यौवन-स्वप्न में विभा जाग रही थी और वे उसे पाने के लिए लालायित थे। लेकिन यह सोचकर बुलाते हुए डरते थे कि सभासद कहीं उन्हें स्त्रैण न समझ बैठें, मंत्री अप्रसन्न न हो जाए और रमाई भाड हंसने न लगे।

रमाई भाड और मंत्री के चले जाने पर राममोहन माल आया और हाथ जोड़कर बोला, "महाराज, आज्ञा दीजिए, मैं जाकर बहूरानी को ले आऊं।"

राजा ने कहा, "क्या ?"

राममोहन ने कहा, "हां महाराज, आज्ञा दीजिए। सूना रनिवास मुझसे देखा नहीं जाता। छाती फटती है। हमारी मां लक्ष्मी आकर घर में उजाला करें और देखकर हमारी आंखें जुड़ाएं।"

राजा ने कहा, "पागल तो नहीं हुआ है राममोहन! प्रतापादित्य की लड़की को मैं घर लाऊंगा! फिर मेरा सम्मान क्या रह जाएगा?"

राममोहन ने चकित होकर कहा, "क्यों महाराज, हमारी बहूरानी ने क्या अपराध किया? और प्रतापादित्य से उनका अब सम्बन्ध ही क्या रहा? ब्याही लड़की पर बाप का क्या अधिकार? वे आपकी रानी हैं और उन्हें घर लाकर आप आदर न करेंगे तो कौन करेगा? आपकी महारानी दूसरों के घर रहें, उनपर आपका कोई अधिकार न रहे, तो महाराज, आपका क्या सम्मान रह जाएगा?"

राजा ने कहा, "अगर प्रतापादित्य ने अपनी लड़की को न भेजा?"

राममोहन ने अपनी विशाल छाती तानकर और भुजाओं को फटकारकर कहा, "भेजेगा कैसे नहीं! किसकी हिम्मत है कि हमारी मां लक्ष्मी को यहां आने से रोके! प्रतापादित्य कितने ही बड़े राजा क्यों न हों, मैं अपनी मां लक्ष्मी को उनके हाथों से छीन लाऊंगा। मैं उन्हें लाकर रहूंगा। वे रोकनेवाले होते कौन हैं?"

यह कहकर वह जाने को उद्यत हुआ, तो राजा ने कहा, "सुनो राममोहन, जाते हो तो जाओ, पर यह बात किसीको मालूम नहीं होनी चाहिए। रमाई अथवा मंत्री किसीको भी पता नहीं लगना चाहिए।"

"बहुत अच्छा महाराज!" कहकर राममोहन चला गया।

रानी के आते ही सबको मालूम हो जाएगा, लेकिन अभी उससे

देर है। तब तक परिस्थिति का सामना करने के लिए प्रस्तुत हुआ जा सकता है। अभी तो उपस्थित लज्जा से रामचन्द्रराय बच गए।

२०

उदयादित्य कैसे सुखी हों, विभा दिन-रात इसी प्रयत्न में लगी रहती है। वह उनका सारा काम स्वयं करती है। उनके लिए स्वयं भोजन लाती और सामने बैठाकर खिलाती है। उनके छोटे से छोटे काम में त्रुटि नहीं होने देती। शाम को जब उदयादित्य अपने कमरे में आ बैठते हैं, दोनों हाथों से आंखें मूंदकर चुप बैठे रहते हैं, शायद आंखों से आंसू गिर रहे होते हैं, तब विभा धीरे-धीरे आकर उनके पांवों के पास बैठ जाती है। वह बात छेड़ने का प्रयत्न करती है, लेकिन कोई बात सुझाई नहीं देती। मन्द दीपक की ज्योति रह-रहकर कांप उठती है, उसके साथ ही दीवार पर एक छाया भी कांपती है। विभा देर तक उस छाया को टकटकी लगाए देखती रहती है और तब दीर्घ निश्वास के साथ सहसा रो उठती है, "भैया, वह कहां गई ?"

उदयादित्य चौंक पड़ते हैं, आंखों पर से हाथ हटाकर विभा के मुंह की ओर देखने लगते हैं, मानो विभा ने जो कहा है वह ठीक उनकी समझ में नहीं आया और वे समझने का प्रयत्न कर रहे हों। सहसा चैतन्य हो उठते हैं, फुर्ती से आंसू पोंछ लेते हैं और विभा से कहते हैं, "आओ विभा, एक कहानी सुनाऊं।"

वर्षा के दिन। खूब बादल घिरे हैं। दिन-भर पानी बरसता रहा, अंधेरा छाया रहा। बाग-बगीचों के पेड़-पौधे स्थिर खड़े भीगते रहे। कभी-कभी हवा के झोंके के साथ पानी की बौछार कमरे में भी चली आती है। उदयादित्य चुप बैठे हैं। आकाश में बादल गरजते हैं, दिगन्त में बिजली चमकती है। वर्षा के अविराम शब्दों में केवल एक ही बात सुनाई पड़ रही है, 'सुरमा नहीं ! सुरमा नहीं !' बीच-बीच में गीली हवा का झोंका 'हू-हू' करता आता है और कह जाता है, 'सुरमा कहां? सुरमा कहां ?' विभा धीरे-धीरे उदयादित्य के समीप आकर कहती है, "भैया !" भैया कोई उत्तर नहीं देते; विभा को देखकर भी वे

सिर खिड़की की चौखट पर टिका मुह नीचा किए पड़े रहते हैं, इसी तरह दिन बीत जाता है, शाम होती है और रात आ पहुंचती है। विभा उनके भोजन का आयोजन करने जाती और लौट आकर कहती है, "भैया, खाना आ गया, खा लीजिए।" उदयादित्य फिर भी कोई उत्तर नहीं देते। रात बहुत हो जाती है। विभा रो उठती है, "भैया, उठो, रात हो गई।" उदयादित्य मुह उठाकर देखते हैं कि विभा रो रही है। वे जल्दी से उठते हैं, विभा के आंसू पोंछते हैं और थाली पर बैठ जाते हैं, लेकिन ठीक से खा नहीं पाते। विभा देखती है और एक दीर्घ निश्वास लेकर सोने चली जाती है। वह भोजन को छूती भी नहीं।

भाई का मनोरंजन करने के लिए विभा बातें करने और कहानियां सुनाने का प्रयत्न करती है, परन्तु बेचारी से कुछ बन नहीं पाता। भाई कैसे सुखी हो, वह कुछ सोच नहीं पाती। उसे रह-रहकर केवल यही विचार आता है कि अगर आज दादा साहब होते···

उदयादित्य के मन में आजकल एक प्रकार का भय बैठ गया है। वे प्रतापादित्य से बहुत डरने लगे हैं। पहले जैसा साहस अब उनमें नहीं रहा। पहले की भांति संकट को तृणवत् समझकर अन्याचारों का प्राणपण से विरोध करने की वृत्ति नहीं रह गई।

प्राणों के मोह से उदयादित्य ऐसा करने लगे हों, सो बात नहीं। उनके मन में एक अन्धा भय बैठ गया है। प्रतापादित्य को वे एक ऐसी विभीषिका समझने लगे हैं, जिसकी मुट्ठी में उनका भाग्य और भविष्यत् सब कुछ बन्द हो। मन यहां तक दुर्बल हो गया कि यदि उदयादित्य मर भी रहे हों और प्रतापादित्य भौंह टेढ़ी करके आदेश दें तो वे मर भी नहीं सकेंगे, उन्हें मृत्यु के मुख से भी लौट आना होगा।

२१

विधवा रुक्मिणी मंगला के पास कुछ नकद रुपया है। वह उसे ब्याज पर चलाकर जीवन-निर्वाह करती है। रूप एवं रुपये के ज़ोर से वह कइयों को वश में किए हुए है। सीताराम शौकीनमिजाज है, पर खाली हाथ है, इसीलिए रुक्मिणी के रूप और रुपये दोनों के प्रति उसका आकर्षण है। जिस दिन घर की मटकी रीती हो जाती है, वह

बन-ठनकर रुक्मिणी के यहां पैसों के लिए पहुंच जाता है। आजकल उनकी हालत बहुत खराब है और आज रुपयों की बहुत ज़रूरत आ पड़ी है, इसलिए रुक्मिणी के यहां आया और हंसते हुए बोला, "भिक्षा दे दे राधिके! सोना-रूपा ना चाहूं, चाहूं मान-रतन की भिक्षा!"

इसकी व्याख्या करते हुए उसने कहा, "मान-रतन की तो अभी कोई आवश्यकता नहीं, जब ज़रूरत होगी देखा जाएगा, अभी तो कुछ सोना-रूपा मिल जाए तो काम चले।"

रुक्मिणी ने सहसा विशेष अनुराग दिखाते हुए कहा, "ज़रूरत होने पर तुम्हें नहीं दूंगी तो किसे दूंगी!"

सीताराम ने तत्काल पैंतरा बदला, "नहीं, वैसी कोई खास ज़रूरत तो है नहीं; असल में सारा रुपया-पैसा मां के हाथ में रहता है, मैं तो कुछ रखता नहीं। आज वह चली गई अपने जमाई से मिलने और रुपया निकालकर देना भूल गई। मैं कल ही लौटा दूंगा।"

मंगला ने मुस्कराकर कहा, "लौटाने की इतनी जल्दी क्या है! जब सुविधा हो दे देना। तुम्हें दे रही हूं, पानी में तो फेंक नहीं रही हूं!"

उसके बाद सीताराम की मां को जाने क्या रोग लगा कि वह दौड़-दौड़कर अपने जमाई के यहां जाने लगी और हर बार रुपया निकालकर देना भूल जाती। सीताराम को प्रायः रुपये के लिए रुक्मिणी के घर आना पड़ता था। फिर देखा गया कि दोनों बड़ी देर तक न जाने किस गुप्त विषय पर परामर्श करने लगे। कई दिनों के परामर्श के बाद सीताराम ने कहा, "मेरे बस का तो यह काम है नहीं, भागवत की मदद के बिना काम चलेगा नहीं।"

उसी दिन शाम को ज़ोर की आंधी के साथ मूसलाधार पानी बरसने लगा। उदयादित्य सब ओर के द्वार बन्द किए, दीप बुझाएं, घोर अन्धकार में आंखें बन्द किए बैठे थे। सहसा खट्-खट् का शब्द सुनाई दिया। वे चौंके, किसीकी पगध्वनि तो नहीं। कान लगाकर सुना। पगध्वनि ही मालूम होती थी। लेकिन छाती इतने ज़ोर से धड़कने लगी कि साफ-साफ कुछ सुनाई न पड़ा। सहसा द्वार खुला और हाथ में दीया लिए हुए एक औरत ने अन्दर प्रवेश किया। उदयादित्य ने आंखें मूंदे हुए ही कहा, "कौन, सुरमा? तुम आ गई?"

स्त्री दीया रखकर बोली, "म्रो हो, तुम तो मुझे भूल ही गए!'

वज्रध्वनि सुनकर जैसे स्वप्न टूट जाता है, उसी प्रकार उदयादित्य ने चौंककर आँखें खोल दी। वे उठकर खड़े हो गए। रुक्मिणी समीप आ गई और मुंह मटकाकर बोली, "अजी, अब मैं क्यों याद आने लगी! इसी तरह भुलाना था तो झूठी आशा बधाकर आकाश मे क्यो चढ़ाया था?"

उदयादित्य चुप खड़े रहे। कुछ बोल न सके। उनकी समझ मे ही नही आया कि क्या करना चाहिए।

तब रुक्मिणी रोकर बोली, "मैंने तुम्हारा ऐसा क्या बिगाड़ा कि आज आँखों का काटा बन गई? तुम्हीने तो मेरा सर्वनाश किया। जिसने एक दिन अपना देह-प्राण युवराज को समर्पित किया, वह आज पथ की भिखारिन है। इस जले भाग्य मे विधाता ने क्या यही लिखा था!"

इस बार उदयादित्य के हृदय को गहरी चोट लगी। अतीत की बात भूल गए और सोचने लगे, 'शायद मैंने ही इसका सर्वनाश किया है।' उसका दीन-मलिन रूप, फटे वस्त्र और रोनी सूरत देखकर उन्हें दया आ गई, बोले "तुम क्या चाहती हो?"

रुक्मिणी ने कहा, "मुझे कुछ नही चाहिए, चाहिए केवल तुम्हारा प्रेम! मैं उस खिड़की मे बैठकर तुम्हारे सीने पर मुह रखकर तुम्हारा प्रेम चाहती हूं। क्या सुरमा की अपेक्षा मेरा यह मुह अधिक काला है?"

यह कहकर रुक्मिणी उदयादित्य के बिस्तरे पर बैठने को उद्यत हो गई। उदयादित्य कातर स्वर मे बोले, "नही, उस बिछौने पर मत बैठो!"

रुक्मिणी चोट खाई हुई नागिन की भाति सिर हिलाती हुई फुफकार उठी, "क्यों न बैठू?"

उदयादित्य ने उसका रास्ता रोककर कहा, "नहीं, नही, उस बिस्तरे के पास तुम मत जाओ। तुम्हे जो चाहिए वह मैं अभी दिए देता हू।"

रुक्मिणी ने कहा, "अच्छा, तो अपनी यह अगूठी दे दो।"

उदयादित्य ने उसी समय अगुली से अगूठी उतारकर फेंक दी। रुक्मिणी उसे उठाकर मन ही मन सोच रही थी, 'उस डाइन का मोह अभी दूर नही हुआ है। कुछ दिन और लगेंगे, तब मेरा मत्र काम करेगा।'

रुक्मिणी के जाने के बाद उदयादित्य बिस्तरे पर बैठ गए और

दोनों हाथों से मुंह ढककर फफकते हुए बोले, "कहां हो सुरमा, तुम कहां हो ! आज मेरे इस दग्ध वज्राहत हृदय को शान्ति कौन देगा !"

२२

भागवत की अवस्था आजकल अच्छी नहीं है। वह घर में चुप बैठा तम्बाकू फूंकता रहता है। पड़ोसी उससे डरते हैं, लेकिन वह उतना बुरा आदमी नहीं। कोई विपद में पड़ जाता है तो भागवत उसे उचित परामर्श देता और उसकी सहायता करता है। वह स्वयं किसीका बुरा नहीं करता, लेकिन कोई यदि उसके साथ बुराई करता है तो वह उसे कभी क्षमा नहीं करता, बदला लेकर ही रहता है। लेन-देन के मामले में बहुत ही खराब आदमी है। एक बार कर्ज़ लेना पड़ा तो बरतन-भांड़े बेचकर पाई-पाई चुका दी।

एक दिन सीताराम ने आकर हालचाल पूछा, और पैसे-टके की तंगी की बात मालूम होने पर बोला, "कर्ज़ क्यों नहीं लेते ?"

भागवत ने कहा, "कर्ज़ तो ले लूं, पर चुकाऊंगा कहां से ! बेचने और बन्धक रखने लायक घर में अब कुछ बचा ही नहीं।"

सीताराम ने साभिमान कहा, "बताओ, तुम्हें कितने रुपये दूं ?"

भागवत ने कहा, "अच्छा, तुम दोगे ! यदि मुट्ठी-भर रुपया पानी में फेंकने की सामर्थ्य हो तो दो, अभी मुझे दस रुपये चाहिए। लेकिन लौटाने की शक्ति मुझमें नहीं है; यह पहले ही कहे देता हूं।"

सीताराम ने आश्वासन दिया, "उसकी तुम चिन्ता न करो भाई !"

इस सहायता के लिए भागवत ने सीताराम को न धन्यवाद दिया, न कृतज्ञता का एक शब्द ही कहा। बस, एक चिलम भरी और लगा दम मारने।

अब सीताराम ने मूल विषय पर आते हुए धीरे-धीरे कहा, "भैया, राजा के अन्याय-अत्याचार से मेरी तो रोटी मारी गई।"

भागवत ने कहा, "तुम्हारी शक्ल तो इस बात की गवाही देती नहीं !" वह सीताराम की बात से कुछ चिढ़ गया था।

सीताराम ने अपनी भूल सुधारी, "मैं तो बात की बात कर रहा था। आज न सही, कल तो हालत खराब होनी ही है।"

भागवत ने कहा, "राजा अन्याय करें तो हम-तुम उनका कर ही क्या सकते है!"

सीताराम बोला, "जब युवराज राजा होंगे तो यशोहर में रामराज्य हो जाएगा। भगवान से यही मनाता हूं कि तब तक हम बचे रहें।"

भागवत ने कुछ नाराजी से कहा, "इन सब बातों से हमें क्या मतलब! तुम बड़े आदमी हो, अपने घर में बैठकर राजा और वजीर को मारते रहो! मैं ठहरा गरीब आदमी! मुझमें इतनी ताब नहीं है।"

सीताराम ने कहा, "नाराज क्यों होते हो! पूरी बात तो सुनो।"

और तब वह फुसफुसाकर अपनी बात कहने लगा।

भागवत एकदम नाराज हो उठा और बोला, "देखो सीताराम, मैं साफ-साफ कहे देता हूं, मेरे आगे ऐसी बात भूलकर भी मत कहना!"

उस दिन सीताराम तो लौट गया, परन्तु भागवत देर तक बैठा उसकी कही बात पर सोचता-विचारता रहा। दूसरे दिन वह स्वयं सीताराम से मिलने के लिए गया और बोला, "कल तुमने बात तो बड़ी पक्की कही। मैं उसीके बारे में सलाह-मशविरा करने आया हूं।"

सीताराम की तो बाछें खिल गईं। फिर दोनों के बीच काफी सोच-विचार के बाद तय हुआ कि युवराज की ओर से प्रतापादित्य के खिलाफ राजविद्रोह का आरोप लगाते हुए स्वयं राजगद्दी पाने के लिए दिल्ली के बादशाह के नाम एक फर्जी चिट्ठी लिखी जाए; उसपर युवराज की सील-मुहर भी रहे। रुक्मिणी जो अंगूठी लाई है उसपर राजकुमार की मुद्रा अंकित होने से सील-मुहर में कोई कठिनाई नहीं होगी।

निश्चय के अनुसार चिट्ठी लिखी गई, उसपर राजकुमार के नाम की सील-मुहर भी लग गई। चिट्ठी लेकर दिल्ली जाने का भार भागवत को सौंपा गया।

भागवत दिल्ली जाने के बदले उस चिट्ठी को लेकर प्रतापादित्य के पास पहुंच गया। महाराज से उसने कहा, "राजकुमार का एक सेवक इसे लेकर दिल्ली जा रहा था। मुझे किसी तरह सुराग मिल गया तो मैं छीन लाया। नौकर भाग गया है।" सीताराम के नाम का उसने उल्लेख तक नहीं किया। चिट्ठी पढ़कर राजा की जो हालत हुई, आसानी से सोचा जा सकता है। हां, भागवत पुनः नौकरी पर लग गया।

२३

विभा के हृदय पर मर्मभेदी दुःख अधिकार जमाते जाते हैं। वह बिछौने पर अकेली पड़ी रोया करती है। रोते-रोते वह कह उठती है, "मैंने ऐसा क्या अपराध किया कि तुमने मेरा परित्याग कर दिया ? कोई पत्र नहीं, किसीको खोज-खवर के लिए भेजा तक नहीं, तुम्हारा कोई समाचार नहीं। तुम्हारी याद में छटपटाया करती हूं, मारे दुःख के छाती फटने लगती है। हाय राम, यह उमर कैसे कटेगी !"

इसी तरह वहुत दिन वीत गए। एकाकिनी विभा का राजमहल के उस सूने कमरे में अपने पति की याद में तड़पते और छटपटाते हुए अनेक दिन वीत गए। इतने में एक दिन राममोहन अकस्मात् आ पहुंचा और प्रणाम करके वोला, "जय हो महारानी की !"

विभा के नेत्रों से आनन्दाश्रु गिरने लगे और वह चकित होकर वोली, "मोहन, तू आया है !"

"हां मां, जब देखा कि तुम मुझे एकवारगी भूल ही गई हो तो याद दिलाने चला आया।"

न जाने क्या-क्या पूछने की विभा के मन में थी लेकिन मारे लज्जा के कुछ पूछ न सकी, और जानने-सुनने के लिए प्राण अकुलाते रहे।

राममोहन ने विभा के मुंह की ओर देखते हुए कहा, "क्यों मां, तुम इतनी उदास क्यों ? चलो मां, अपने घर चलो। यहां तो तुम्हारी खोज-खवर लेनेवाला कोई है नहीं।"

विभा वोली कुछ नहीं, म्लान हंसी हंसकर रह गई। वहुत दिनों के अपमान के वाद सहसा आदर और स्नेह पाकर जो अभिमान जाग उठता है, विभा उसी अति कोमल और अनन्त प्रीतिपूर्ण अभिमान से भरकर रो उठी। उसने मन मन ही कहा, 'इतने दिनों के वाद क्या अव मेरी याद आई है ?'

राममोहन की आंखों में भी आंसू भर आए; वह वोला, "यह क्या असगुन कर रही हो मां लक्ष्मी ! तुम हंसती हुई अपने घर चलो। आज के शुभ दिन आंसू न वहाओ, अपनी आंखों को पोंछ डालो।"

रानी को वड़ा डर था कि शायद जमाई उनकी वेटी को अव कभी

स्वीकार नहीं करेंगे। इसलिए जब यह सुना कि राममोहन विभा को लेने आया है तो वे खुशी से फूली नहीं समाईं। उन्होंने राममोहन को बुलाकर जामाता के घर का कुशल-समाचार पूछा। कल का दिन शुभ होने से विभा को कल ही ससुराल भेजने का निश्चय हो गया। प्रतापादित्य ने इस विषय में कोई आपत्ति नही की।

जब सब तय हो गया तो विभा उदयादित्य के पास गई। वे अकेले बैठे जाने क्या सोच रहे थे। विभा को देखकर वे सहसा चौंक पड़े और बोले, "तो विभा, तुम जा रही हो? अच्छा ही हुआ। आशीर्वाद देता हू कि लक्ष्मीस्वरूप होकर पति के घर को शोभित करो!"

विभा उदयादित्य के पावों में पडकर रोने लगी। उदयादित्य के भी आसू गिरने लगे। विभा के माथे पर हाथ रखकर वे बोले, "क्यों रोती हो! यहा तुझे कौन सुख था! चारो ओर केवल दु.ख, कष्ट और शोक ही तो था। इस कारागार से मुक्त हो तुम बच गई!"

विभा के उठने पर उन्होने कहा, "जा रही हो! खुशी से जाओ, लेकिन पति के घर जाकर मुझे भूल मत जाना। बीच-बीच में अपना कुशल-समाचार भेजती रहना।"

वहा से जाकर विभा ने राममोहन से कहा, "अभी तो मैं चल नहीं सकूगी मोहन!"

राममोहन ने विस्मित होकर कहा, "यह आप कह क्या रही हैं माजी?"

विभा ने कहा, "नही, मैं चल नही सकूगी। भाई को इस समय अकेले छोडकर मुझसे जाते नही बनेगा। उन्हे दु.ख मे छोडकर मैं सुख-भोग के लिए जाऊ? मेरे न रहने पर उनकी देख-भाल कौन करेगा!" कहते-कहते वह रो पडी और चली गई।

अन्त.पुर मे खलबली मच गई। रानी ने विभा को बहुत समझाया, डराया-धमकाया, पर वह यही कहती रही, "नही मा, मैं जा न सकूगी।"

. रानी रोष-क्रोध से रुआसी हो गईं और झुझलाकर बोलीं, "ऐसी लडकी तो मैंने कभी देखी नही!" फिर वे महाराज के पास गईं और उन्हें सारा हाल बताया। महाराज ने बिना किसी चिंता और उद्विग्नता के कहा, "अच्छी बात है; यदि विभा की इच्छा नही, तो न जाए।"

रानी दंग रह गई, निराश होकर बोलीं, "आपके जो मन में आए करें, मैं अब किसी बात में कुछ न बोलूंगी।"

उदयादित्य को भी बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने विभा को बहुतेरा समझाया, पर वह चुप रोती रही; न कुछ सुना, न कुछ समझा।

निराश राममोहन ने आकर म्लान मुख से कहा, "तो मां, मैं चलता हूं। महाराज से जाकर क्या कह दूं?"

विभा चुप खड़ी रही। राममोहन प्रणाम करके उठ खड़ा हुआ। विभा व्याकुल होकर रो पड़ी और कातर स्वर में पुकार उठी, "मोहन!"

मोहन ने लौटकर कहा, "क्या है मां?"

विभा ने कहा, "महाराज के श्रीचरणों में मेरा प्रणाम निवेदन करना और कहना कि मुझे क्षमा कर दें। उन्होंने स्वयं बुलाया, फिर भी मैं जा न सकी, यह मेरा दुर्भाग्य नहीं तो क्या है!"

राममोहन ने पुनः प्रणाम करके कहा, "जो आज्ञा।" और चल दिया। विभा समझ गई कि राममोहन उसकी बात को ठीक से समझ नहीं सका। जहां वह जाना चाहती थी, जा न सकी और ऊपर से राममोहन, जो उसे वास्तव में स्नेह करता था, नाराज़ होकर चला गया। विभा के प्राणों पर जो बीती उसे वही जानती है।

विभा रह गई। उमड़ते आंसुओं को पोंछ, छाती पर पत्थर रख वह अपने भाई के लिए रह गई।

इन्हीं दिनों भागवत ने वह जाली चिट्ठी प्रतापादित्य को दिखाई। वे आगबबूला हो उठे। काफी सोचने-विचारने के बाद उन्होंने राजकुमार को कारागार में रखने का आदेश दे दिया।

मन्त्री ने कहा, "महाराज, युवराज ने ऐसा काम किया हो, इसपर किसी भी तरह विश्वास नहीं होता।"

प्रतापादित्य ने कहा, "विश्वास तो मुझे भी नहीं होता, किन्तु कारागार में रखने में हर्ज ही क्या है! बस, वहां किसी प्रकार की तकलीफ नहीं होनी चाहिए। पहरा इसलिए लगाना आवश्यक है जिससे वह गुप्त रूप से कुछ कर न बैठे।"

जब राममोहन अपराधी की भांति हाथ जोड़े राजा रामचन्द्रराय के सामने अकेला आकर खड़ा हो गया तो उनको सिर से पांव तक आग लग गई। उन्होंने तय कर रखा था कि विभा के आने पर उसे प्रतापादित्य और उनके सारे वंश के बारे में दो-चार खरी-खरी सुनाकर अपने दिल की जलन निकाल लेंगे। वैसे रामचन्द्रराय कोई गंवार नहीं कि अपनी पत्नी का उत्पीड़न करें। इस आनन्द में वे इतने तल्लीन और अधीर हो रहे थे कि एक क्षण के भी लिए उनके मन में यह विचार नहीं आया कि विभा के आने में कोई बाधा हो सकती है। ऐसे समय राममोहन को अकेला आया देख उनके विस्मय का ठिकाना न रहा। वे बोल उठे, "क्या हुआ, राममोहन ?"

राममोहन ने कहा, "सब बेकार गया, महाराज ! किसी बुरी साइत में घर से निकला था, ला न सका।"

राजा ने अत्यन्त कुपित होकर कहा, 'नालायक, तुझे जाने के लिए कहा ही किसने था ? मैंने बार-बार रोका, परन्तु तू छाती फुलाकर चला ही गया और आज···"

राममोहन ने कपाल ठोककर कहा, "क्या कहूं महाराज, सब मेरे भाग्य का दोष है !"

रामचन्द्रराय ने और भी कुपित होकर कहा, "हूं, रामचन्द्रराय का अपमान ! कम्बख्त, सब तेरा ही दोष है ! तू मेरे नाम से भीख मांगता हुआ गया और प्रतापादित्य ने ठुकरा दिया ! ऐसा अपमान तो हमारे वंश में आज तक किसीका नहीं हुआ !"

इसपर राममोहन ने सिर उठाकर सगर्व कहा, "महाराज ! यदि प्रतापादित्य भेजने से इन्कार करते तो मैं छीन लाता। जब मैं आपके हुक्म की तामील करने जाता हूं तो क्या प्रतापादित्य से डरता हूं ? वे राजा होंगे तो अपने घर के, मेरे राजा तो हैं नहीं।"

राजा ने कहा, "तब क्या हुआ ?"

राममोहन देर तक चुप रहा, उसकी आंखों में आंसू भर आए।

राजा ने अधीर होकर कहा, "राममोहन, शीघ्र बता।"

राममोहन बड़ी मुश्किल से कह पाया, "हुजूर, मांजी ही आने को राज़ी नहीं हुई।"

कहते-कहते उसकी आंखें भर आईं। इस विचार में कि मां रानी पर मेरा इतना विश्वास था कि सीना तानकर उन्हें ले आऊंगा, पर मां आईं नहीं, उन्होंने मेरी बात न रखी, वह अपने आंसू रोक न सका।

सुनते ही राजा उठ खड़े हुए और आंखें निकालकर बोले, "अच्छा, वही आने के लिए राज़ी नहीं हुई। हुं! नालायक कहीं का! निकल जा यहां से, चला जा मेरे सामने से!"

राममोहन चुपचाप बाहर चला गया। वह जानता था कि सारा दोष उसीका है, इसलिए दण्डित किया जाना उचित भी है।

रामचन्द्रराय की समझ में नहीं आया कि इस अपमान का बदला लेने के लिए क्या करें। वे व्यग्र होकर कक्ष में चक्कर काटने लगे।

थोड़े ही दिनों में सब लोगों को यह बात मालूम हो गई। अब रामचन्द्रराय को बदला लिए बिना अपनी नाक बचती नहीं दिखाई दी। रामचन्द्रराय के मन में प्रतिहिंसा की प्रवृत्ति एक तो योंही प्रबल थी और दूसरे यह बात उनके मन में खटकती रहती थी कि बदला लिए बिना नौकर-चाकर और प्रजा को वे अपना मुंह कैसे दिखा पाएंगे! सबसे अधिक डर उन्हें रमाई भांड़ का था। यह कल्पना ही कि रमाई इस प्रसंग को लेकर किसीके आगे उनकी खिल्ली उड़ा रहा है, उनके लिए असह्य हो उठती थी।

एक दिन सभा में मंत्री ने प्रस्ताव किया, "महाराज को एक विवाह और कर लेना चाहिए।"

रमाई भांड़ ने कहा, "और प्रतापादित्य की लड़की अपने भाई को लेकर रहे!"

राजा रमाई की ओर देखकर हंस दिए और बोले, "बहुत ठीक कहा रमाई तुमने।"

राजा को हंसते देख सारी सभा हंसने लगी। केवल सेनापति फर्नाण्डिज नहीं हंस सका। रामचन्द्रराय की कोटि के लोग अपने सम्मान की रक्षा के लिए चिन्तित तो बहुत रहते हैं, किन्तु सम्मान कहते किसे हैं और उसकी रक्षा कैसे की जाती है, इसे वे बिलकुल नहीं जानते।

दीवानजी ने कहा, "तब तो मजा आ जाएगा। प्रतापादित्य और उनकी लड़की को ऐसी शिक्षा मिलेगी कि जीवन-भर याद रहेगी।"

रमाई भाड़ ने कहा, "इस शुभ अवसर पर महाराज अपने वर्तमान श्वसुर को निमंत्रण-पत्र भेजना न भूलें, नहीं तो उस बेचारे को बड़ा दुःख होगा। और वधू-वरण के लिए यशोहर से अपनी सास महारानी को बुला लीजिएगा।"

यह कहकर रमाई ने आंखें मिचकाई और उधर हंसी का फव्वारा छूटने लगा। राजा हंसते-हंसते लोटपोट हो गए। मंत्री हंसे। सभासद चादर मुंह में लगाकर हंसने लगे। अकेला फर्नान्डिज न हंस सका और सबकी आंखें बचाकर वहां से खिसक गया।

रमाई ने फिर कहा, "और 'मिष्टान्नमितरे जना.'—प्रतापादित्य की लड़की को जब मिठाई का थाल भेजें तो साथ दो कच्चे केले भी भेज दें।"

इस पर पुनः कहाकहा बुलन्द हुआ।

विवाह की बात बिलकुल पक्की हो गई।

२५

उदयादित्य को कारागार में नहीं, राजप्रासाद से लगी हुई एक छोटी-सी अट्टालिका में बन्दी किया गया। उस मकान के दाहिनी ओर राजपथ और पूर्व की ओर लम्बी-चौड़ी दीवार है, जिसपर प्रहरी घूमते हुए पहरा देते हैं। उस रात उदयादित्य से सोया न गया, खिड़की के पास बैठे उन्हीं प्रहरियों को अनवरत पगध्वनि को सुनते रहे।

जब उदयादित्य को कारागार में ले गए, विभा अन्तःपुर में नहीं थी। वह राजमहल के उद्यान में थी। अन्तःपुर में दास-दासियों और बुआ-मौसियों की भीड़ से वह संत्रस्त हो उठी थी। हर घड़ी की पूछताछ और जिज्ञासा से वह तंग आ चुकी थी। न रो सकती थी, न लम्बी सांसें ही ले सकती थी, क्योंकि उसके हर आंसू का हिसाब रखा जाने लगा था और हर दीर्घ निश्वास का विस्तृत भाष्य और समालोचना होने लगी थी। जब उससे यह सब सहा नहीं गया तो वह राजमहल के बगीचे में एक झाऊ के पेड़ तले जा बैठी। आज सारे दिन घटाटोप बादल छाए

रहे; कब सवेरा हुआ, कब सांझ और कब रात, कुछ भी पता न चला।

दूसरे दिन विभा ने कारागार में उदयादित्य के पास जाने की चेष्टा की, परन्तु उसे अनुमति नहीं मिली। बहुत रोने-धोने के बाद भी जब कोई परिणाम नहीं हुआ तो वह प्रतापादित्य के पास जाकर उनके पांवों में पड़ गई। सारा दिन इसीमें बीत गया और तब कहीं मुश्किल से इजाज़त मिली। दूसरे दिन सवेरा भी न होने पाया था कि वह उदयादित्य के पास पहुंच गई। देखा तो वे खिड़की से सिर टिकाए ज़मीन पर बैठे ऊंघ रहे थे। बड़ी मुश्किल से उसने अपनी रुलाई को रोका।

इतने में सवेरा हुआ, उदयादित्य जाग पड़े। विभा को अपने सामने देखकर सहसा बोल उठे, "विभा, तुम! इतने सवेरे-सवेरे!" फिर चारों ओर देखकर बोले, "यह मैं कहां आ गया?" लेकिन दूसरे ही क्षण उन्हें अपनी परिस्थिति का भान हुआ और उन्होंने एक लम्बी सांस लेकर कहा, "ओह, विभा तुम आई हो! कल सारा दिन तुम्हें देखा नहीं तो यही सोचता रहा कि अब शायद तुमसे भेंट नहीं होगी।"

विभा ने आंखें पोंछकर कहा, "भैया, आप ज़मीन पर क्यों बैठे हैं? चादर ज़रा भी मैली नहीं हुई, इससे लगता है कि आपने विस्तरे पर पांव तक नहीं दिया। तो क्या पिछले दो दिन ज़मीन पर ही पड़े रहे? हाय भैया!" कहते-कहते वह रोने लगी।

उदयादित्य ने धीरे-धीरे कहा, "विस्तरे पर बैठने से मुझे आकाश जो नहीं दिखाई देता! खिड़की के पास बैठने पर जब आसमान में उड़ते हुए पक्षी देखता हूं तो मन करता है कि यह पिंजरा टूट जाए, मेरे भी पंख निकल आएं और अनन्त आकाश में उड़ता फिरूं। विभा, इस काल-कोठरी में यह दो हाथ ज़मीन ही ऐसी है जहां बैठकर मैं अपने को वास्तविक रूप से स्वतन्त्र और मुक्त समझ पाता हूं, इतना मुक्त कि कोई भी राजा-महाराजा मुझे वन्दी नहीं बना सकता। वास्तव में यह मिट्टी का आसन ही मेरा स्वतन्त्र संसार है और वहां राजमहल की कोमल शय्या तो मेरा वन्दीगृह थी।"

आज विभा को सहसा देखकर उदयादित्य का मन अत्यन्त आनन्दित हो उठा। विभा को देखते ही जैसे उनके कारागर के समस्त द्वार उन्मुक्त हो गए। आज उन्होंने विभा को अपने पास बिठाकर इतनी बातें

की जितनी इसके पहले कभी नहीं की थीं। भाई के इस आनन्द को उसने समझा, आत्मसात् किया और पुलकित हो उठी। उसे विश्वास हो गया कि वह अपने भाई को आनन्दित कर सकती है। इससे उसे बड़ा बल मिला। उसके आत्मविश्वास में अभिवृद्धि हुई। आज उसे अपना पथ दिखाई दे गया; उसकी सारी निराशा, सारी थकावट दूर हो गई।

अब विभा भी प्राय: कारावासिनी हो उठी। कारागृह की उस खिड़की से जैसे ही सवेरे की किरण प्रवेश करती, कारागार के द्वार को खोलकर विभा की विमलमूर्ति अन्दर आती दिखाई पड़ती। वह नौकरों को कुछ भी न करने देती, अपने भैया का सारा काम वह स्वयं करती, प्रतिदिन सवेरे महल के बगीचे में जाकर स्वयं फूल लाती।

घर में महाभारत की एक पोथी थी। उदयादित्य विभा को अपने पास बिठाकर रोज़ महाभारत की कथाएं सुनाते। किन्तु उदयादित्य के मन में बहिन को लेकर बड़ा कष्ट और वेदना थी। वे सोचते, 'मैं तो डूब ही रहा हूं, अपने साथ इसको भी क्यों डुबाऊं?' रोज़ रात में सोचते, 'कल विभा से जाने के लिए कहूंगा, अवश्य कहूंगा!' लेकिन सवेरा होता और वे प्रयत्न करके भी कह न पाते। इस तरह कई दिन बीत गए। आखिर एक दिन जी कड़ा करके उन्होंने कहा, "विभा, अब तुम यहां मत रहो। तुम्हारे गए बिना मुझे शान्ति नहीं मिलेगी। तुम अपनी ससुराल चली जाओ। बीच-बीच में समाचार देती रहोगी तो उसीसे मुझे सन्तोष होता रहेगा।"

विभा चुप रही। उदयादित्य देर तक टकटकी लगाए विभा के मुंह की ओर देखते रहे। उसके नेत्रों से झर-झर आंसू बहने लगे। उदयादित्य समझ गए कि मेरे बन्दीगृह से मुक्त हुए बिना विभा मुझे छोड़कर कहीं न जाएगी। लेकिन मुक्त कैसे हुआ जाए?

२६

रामचन्द्रराय का खयाल है कि विभा केवल प्रतापादित्य के निषेध और उदयादित्य की मन्त्रणा के ही कारण चन्द्रद्वीप नहीं आई। यह विचार भी उनके मन में उठता है कि शायद वह अपनी इच्छा से ही नहीं आई; परन्तु इसे वे तत्काल दबा लेते हैं, क्योंकि यह विचार उनके

आत्मगौरव को चोट पहुंचाता है। अन्त में उन्होंने सोचा कि प्रतापादित्य मेरा अपमान करते हैं तो मैं भी उनको अपमानित करने के लिए ऐसा पत्र क्यों न लिख दूं कि 'तुम अपनी लड़की को चन्द्रद्वीप कभी न भेजना। मैंने उसे सदा के लिए छोड़ दिया है।' काफी सोच-विचारकर उन्होंने हिम्मत करके ऐसा पत्र लिख ही डाला; और तब राममोहन को बुलाकर बोले, "जाओ, इस पत्र को यशोहर पहुंचा आओ।"

राममोहन ने हाथ जोड़कर कहा, "नहीं महाराज, यह काम मुझसे नहीं बनेगा। हां, यदि आप मां रानी को फिर से लिवाने के लिए भेजना चाहें तो एक बार और जा सकता हूं। लेकिन यह चिट्ठी लेकर तो हरगिज़ नहीं जाऊंगा।"

तब रामचन्द्र राय ने बिना कुछ कहे बूढ़े नयनचन्द के हाथ वह पत्र यशोहर भेज दिया। नयनचन्द बड़ा ही डरपोक आदमी था। प्रतापादित्य के हाथ में पत्र देने का उसका साहस न हुआ। चुपचाप जाकर रानी के हाथ में पत्र थमा दिया। रानी की हालत वैसे ही अच्छी न थी। विभा के दुःख और उदयादित्य के कारावास के कारण उनका मन उखड़ा-उखड़ा-सा रहता था और वे प्रायः छिपकर रोती रहती थीं। वह पत्र पाकर तो उनके हाथों के तोते ही उड़ गए। बेचारी बड़े धर्म-संकट में पड़ गई। विभा से कहा, तो वह बचेगी नहीं, पति से कहा तो अनर्थ ही हो जाएगा। फिर भी अन्त में रोती हुई महाराज के निकट पहुंचीं और बोलीं, "महाराज, विभा के सम्बन्ध में कुछ न कुछ करना ही होगा।"

प्रतापादित्य ने पूछा, "क्यों, क्या हुआ ?"

रानी बोलीं, "नहीं, हुआ तो कुछ भी नहीं, लेकिन उसे ससुराल तो भेजना ही होगा।"

प्रतापादित्य ने कहा, "सो तो समझ गया, लेकिन इतने दिनों के बाद आज सहसा ऐसी क्या बात हो गई।"

रानी घबरा उठीं और डरे हुए स्वर में बोलीं, "मैं कब कहती हूं कि कुछ हुआ है, लेकिन मान लीजिए कि कुछ हो जाए ?"

प्रतापादित्य ने झुंझलाकर कहा, "और क्या होगा ?"

रानी—मान लीजिए कि जमाई विभा को सदा के लिए छोड़ दें ? कहते-कहते रानी रो पड़ीं।

प्रतापादित्य ने कहा, "तब उसकी उचित व्यवस्था की जाएगी।"

रानी ने रोकर कहा, "महाराज, आपके पांवों पड़ती हूं, मेरी इतनी बात रख लीजिए। जरा विभा के बारे में भी तो सोचिए कि उसका क्या होगा। उदय को, मेरे लाल को आपने साधारण अपराधियों की भांति कैदखाने में डाल रखा है। उस बेचारे ने किसीका कोई अपराध नहीं किया, न वह कुछ समझता-बूझता है। अबूझ है मेरा लाल। राज-काज सीख नहीं सका, शासन करना जानता नहीं, उसमें उस बेचारे का क्या दोष! भगवान ने जैसा बना दिया है, वैसा है।"

प्रतापादित्य ने झुंझलाकर कहा, "यह सब सुनते-सुनते तो कान पक गए; जो कहने आई थी वही कहो न अब!"

रानी ने कपाल ठोककर कहा, "कहूं क्या, मेरा जला भाग्य! एक बार विभा के मुंह की ओर तो देखो! वह किसीसे कुछ कहती नहीं, दिन-दिन सूखती जाती है। उसका कोई उपाय करो, नहीं तो वह जा न सकेगी।"

प्रतापादित्य और भी झुंझला उठे। यह देख रानी वहां से चुपचाप चली गई।

२७

जब सीताराम ने सुना कि उदयादित्य बन्दीगृह में डाल दिए गए हैं तो उसने खूब हाथ-पांव पटके। रुक्मिणी के यहां पहुंचा और जो मुंह में आया, बक चला, यहां तक कि मारने-पीटने पर भी आमादा हो गया।

पहले तो रुक्मिणी सीताराम की जली-कटी सुनती रही, फिर वह आगबबूला हो गई। लेकिन सीताराम पहले ही वहां से चला गया। जब उसका क्रोध कुछ शान्त हुआ, तो वह बमकने लगी, 'अच्छा, जैसे युवराज मेरे कोई नहीं! उनपर विपत्ति पड़ी तो तुझीको दर्द हुआ, क्यों, और मुझे कुछ न हुआ? कलमुहे, तू क्या जाने कि वे मेरे हैं और मैं ही उनका भला-बुरा सब कुछ कर सकती हूं। मेरे युवराज को कैद से छुड़ानेवाला तू कौन होता है, देखती हूं, कैसे छुड़ाता है।'

सीताराम उसी दिन रायगढ़ चला गया।

शाम के समय वसन्तराय रायगढ़ के महल के बरामदे में बैठे थे। सीताराम ने 'महाराज की जय हो' कहकर प्रवेश किया और प्रणाम

करके खड़ा हो गया।

वसन्तराय चौंक पड़े। सीताराम को पहचान, उसके समीप आ, कन्धे पर हाथ रख दिया और बोले, "आओ सीताराम, आओ! अच्छे तो हो? भैया कैसे हैं? बिटिया कैसी है? सब कुशल तो है न?"

सीताराम ने कहा, "सब बतलाता हूं, महाराज!"

उसने एक-एक कर युवराज के बन्दी बनाए जाने का पूरा हाल कह सुनाया; परन्तु वह कारण नहीं बताया जिसके लिए उन्हें कारागार में बन्द किया गया था।

सुना तो वसन्तराय के सिर पर जैसे आसमान टूट पड़ा। सीताराम की ओर देखते हुए केवल इतना कह सके, "एं!"

सीताराम ने कहा, "जी हां, महाराज!"

थोड़ी देर चुप रहने के बाद वसन्तराय बोले, "सीताराम!"

सीताराम—"जी महाराज!" वसन्तराय—"इस समय भैया कहां हैं?" सीताराम—"जी, उसी कारागार में।"

थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद सीताराम का हाथ पकड़कर बोले, "सीताराम!"

सीताराम—"जी महाराज!" वसन्तराय—"भैया इस समय वहां क्या कर रहे हैं?" सीताराम—"करेंगे क्या, वहीं कैदखाने में हैं।" वसन्तराय—"क्या उन्हें बिलकुल बन्द कर रखा है?" सीताराम—"जी हां, महाराज!" वसन्तराय—"क्या उन्हें बाहर निकलने ही नहीं देते?" सीताराम—"जी नहीं।" वसन्तराय—"क्या वे अकेले कारागार में पड़े रहते हैं?"

असल में वसन्तराय ये सब प्रश्न किसी व्यक्ति-विशेष से नहीं, स्वयं अपने-आपसे ही पूछ रहे थे।

सहसा वसन्तराय कह उठे, "भैया, तुम मेरे पास कैसे चले आए! तुम्हें किसीने पहचाना नहीं?"

२८

दूसरे ही दिन वसन्तराय यशोहर के लिए चल पड़े। वहां पहुंचकर सीधे अन्तःपुर में गए। विभा उन्हें सहसा आया देख स्तम्भित हो उठी;

न कुछ बोल सकी न कुछ कर ही सकी। थोड़ी देर योंही विस्मित खड़ी रही, फिर उनके पांवों में पड़कर प्रणाम किया और उनकी चरणधूलि माथे से लगाई। बसन्तराय ने एकटक उसके चेहरे की ओर देखते हुए पूछा, "विभा बेटी, इस घर में क्या कोई भी नहीं है?"

विभा ने रोते हुए कहा, "नहीं दादा साहब, कोई नहीं है।"

बसन्तराय विभा का हाथ पकड़े बड़ी देर तक चुप खड़े रहे। फिर प्रतापादित्य के समीप जाकर प्रार्थना के स्वर में बोले, "बेटा प्रताप, उदय को इतना कष्ट क्यों दे रहे हो? उसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? यदि वह तुम्हें अच्छा न लगता हो, यदि तुम्हें उससे कोई शिकायत हो, तो उसे मेरे पास क्यों नहीं भेज देते? मैं उसे कभी यहां आने नहीं दूंगा।"

प्रतापादित्य बड़े धैर्य के साथ बसन्तराय का कथन सुनते रहे, अंत में उन्होंने कहा, "चाचाजी, मैंने जो कुछ किया है, खूब सोच-विचारकर ही किया है। इन विषय में आप मेरी अपेक्षा अवश्य ही बहुत कम जानते हैं। मैं इस सम्बन्ध में आपकी कोई बात नहीं मान सकता।"

तब बसन्तराय उठकर प्रतापादित्य के समीप आ बैठे और उनका हाथ पकड़कर बोले, "बेटा प्रताप, मैंने ऐसा कौन-सा अपराध किया कि तू इस बुढ़ापे में मुझे इतना दुःख दे रहा है? मैं यह नहीं कहता कि तेरा पालन-पोषण कर मैंने कोई बड़ा उपकार किया और तुझे मेरा ऋणी होना चाहिए। नहीं, तेरा लालन-पालन तो मेरा कर्तव्य था और वह करके मैंने भैया के स्नेह-ऋण से उऋण होने का ही प्रयत्न किया है। प्राप्य कहकर मैं तुझसे कुछ नहीं मांगता, केवल भीख चाहता हूं। बेटा प्रताप! क्या वह भी तू मुझे नहीं देगा?"

बसन्तराय के आंसुओं का बांध टूट गया। प्रतापादित्य पाषाणमूर्ति की भांति बैठे रहे। बसन्तराय आगे बोले, "तो मेरी प्रार्थना नहीं सुनोगे? भिक्षा नहीं दोगे? मेरी बात का उत्तर नहीं दोगे, प्रताप?" फिर एक दीर्घ निश्वास लेकर बोले, "अच्छी बात है; तो एक बार मुझे उदय से मिल लेने दो!"

लेकिन प्रतापादित्य ने उनकी यह प्रार्थना भी ठुकरा दी।

निराश होकर बसन्तराय अन्तःपुर में लौट गए। वे अत्यन्त क्षुब्ध और दुःखित हो रहे थे। उनका मुंह देखकर विभा को अत्यन्त कष्ट

करके खड़ा हो गया।

वसन्तराय चौंक पड़े। सीताराम को पहचान, उसके समीप आ, कन्धे पर हाथ रख दिया और बोले, "आओ सीताराम, आओ! अच्छे तो हो? भैया कैसे हैं? बिटिया कैसी है? सब कुशल तो है न?"

सीताराम ने कहा, "सब बतलाता हूं, महाराज!"

उसने एक-एक कर युवराज के बन्दी बनाए जाने का पूरा हाल कह सुनाया; परन्तु वह कारण नहीं बताया जिसके लिए उन्हें कारागार में बन्द किया गया था।

सुना तो वसन्तराय के सिर पर जैसे आसमान टूट पड़ा। सीताराम की ओर देखते हुए केवल इतना कह सके, "ऐं!"

सीताराम ने कहा, "जी हां, महाराज!"

थोड़ी देर चुप रहने के बाद वसन्तराय बोले, "सीताराम!"

सीताराम—"जी महाराज!" वसन्तराय—"इस समय भैया कहा हैं?" सीताराम—"जी, उसी कारागार में।"

थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद सीताराम का हाथ पकड़कर बोले, "सीताराम!"

सीताराम—"जी महाराज!" वसन्तराय—"भैया इस समय वहां क्या कर रहे हैं?" सीताराम—"करेंगे क्या, वहीं कैदखाने में हैं।" वसन्तराय—"क्या उन्हें बिलकुल बन्द कर रखा है?" सीताराम—"जी हां, महाराज!" वसन्तराय—"क्या उन्हें बाहर निकलने ही नहीं देते?" सीताराम—"जी नहीं।" वसन्तराय—"क्या वे अकेले कारागार में पड़े रहते हैं?"

असल में वसन्तराय ये सब प्रश्न किसी व्यक्ति-विशेष से नहीं, स्वयं अपने-आपसे ही पूछ रहे थे।

सहसा वसन्तराय कह उठे, "भैया, तुम मेरे पास कैसे चले आए! तुम्हें किसीने पहचाना नहीं?"

२८

दूसरे ही दिन वसन्तराय यशोहर के लिए चल पड़े। वहां पहुंचकर सीधे अन्तःपुर में गए। विभा उन्हें सहसा आया देख स्तम्भित हो उठी;

है कि कहीं वे लोग उसका निरादर न करें।"

वसन्तराय ने कहा, "कैसी बात करती हो! विभा का भला कोई निरादर करेगा! ऐसी लक्ष्मी, ऐसी सोने की प्रतिमा और है ही कहां! रामचन्द्रराय ने तो केवल तुम लोगों पर गुस्सा होकर यह पत्र लिख मारा है, विभा के वहां पहुंचते ही उनका सारा क्रोध शांत हो जाएगा।"

वसन्तराय ने अन्त में कहा, "महल में तुम यह बात फैला दो कि विभा को बुलाने के लिए चन्द्रद्वीप से पत्र आया है। इससे विभा भी वहां जाने के लिए अवश्य राजी हो जाएगी।"

२९

सन्ध्या के समय वसन्तराय अकेले बाहर के मकान में बैठे हैं। इतने में सीताराम ने आकर प्रणाम किया। वसन्तराय ने उससे पूछा, "कहो सीताराम, क्या खबर है?"

सीताराम ने कहा, "सो बाद में बतलाऊंगा। अभी तो आपको मेरे साथ चलना होगा।"

कहकर सीताराम उनके पास आ गया और चुपके से उनके कान में कुछ कहा, जिसे सुनकर वसन्तराय ने चकित होकर पूछा, "सच!"

सीताराम—जी हां, महाराज।

वसन्तराय कुछ देर तक असमंजस की सी स्थिति में रहे, फिर बोले, "क्या अभी ही चलना होगा?"

सीताराम—"जी हां।" वसन्तराय—"एक बार विभा से मिल लेने पर नहीं बनेगा?" सीताराम—"जी नहीं, बिलकुल समय नहीं है।" वसन्तराय—"कहां चलना होगा?" सीताराम—"मेरे संग चलिए, मैं ले चलूंगा।"

वसन्तराय खड़े हो गए और बोले, "क्यों, एक बार विभा से मिल आऊं तो कैसा रहे?"

सीताराम ने कहा, "नहीं महाराज, देर करने से तो सर्वनाश ही हो जाएगा।"

इस पर वसन्तराय ने कहा, "तो अच्छी बात है, चलो; किसीसे मिलने की आवश्यकता नहीं।" और दोनों चल दिए।

हुआ। उनका हाथ पकड़कर उसने कहा, "चलिए दादा साहब, मेरे कमरे में चलिए।"

इतने में एक दासी ने आकर प्रणाम किया और बोली, "रानी मां आपको प्रणाम करना चाहती हैं।"

वसन्तराय उठकर रानी के पास चले गए और विभा कारागार में उदयादित्य के पास चली गई।

रानी के प्रणाम करने पर वसन्तराय ने आशीर्वाद दिया, "आयुष्मती होओ।"

रानी ने कहा, "चाचाजी, ऐसा आशीर्वाद मत दीजिए। अब तो मरकर सारे झमेले से मुक्त हो जाना चाहती हूं।"

वसन्तराय व्यग्र होकर बोल उठे, "राम, राम! ऐसी बात कभी नहीं कहनी चाहिए।"

रानी ने कहा, "और क्या कहूं, काका साहब! हमारे परिवार पर तो शनि की दृष्टि बढ़ गई है। विभा के मुंह की ओर देखा नहीं जाता। ऊपर से यह एक सर्वनाशिनी चिट्ठी आ गई है।"

उन्होंने जामाता की चिट्ठी बसन्तराय के हाथों में थमा दी। वे अभी उसे पढ़ ही रहे थे कि रानी रोते-रोते कहने लगीं, "मेरे लिए अब इस जीवन में सुख ही क्या रहा! मेरे लाल को महाराज ने बन्दीगृह में डाल रखा है। उस बेचारे का कोई दोष नहीं। पता नहीं वहां वह कैसे रहता है। उसे देखने के लिए भी मुझे जाने नहीं देते।"

पत्र पढ़कर बसन्तराय के दुःख का पार न रहा। घबराकर फिर रानी से पूछा, "यह पत्र किसीको दिखाया तो नहीं?"

रानी ने कहा, "नहीं, किसीको भी नहीं। महाराज को पता लग जाए तो क्या वे किसीको ज़िन्दा छोड़ेंगे? और विभा को पता लग जाए तो क्या वह ज़िन्दा बचेगी?"

बसन्तराय बोले, "अच्छा ही किया। यह पत्र किसीको भी मत दिखाना। अब तुम विभा को शीघ्र से शीघ्र उसकी ससुराल भेज दो; मान-अपमान का ज़रा भी विचार मत करो।"

रानी ने कहा, "मान-अपमान को मैं क्या करूंगी; मैं तो केवल यह चाहती हूं कि किसी तरह मेरी विभा सुखी हो। डर केवल इतना ही

जवाब दोगे ? युवराज भाग गए हैं। कल एक-एक को सजा न दिलवाई तो मेरा नाम नहीं…"

"राजकुमार भाग गए तो अच्छा ही हुआ, तेरे बाप का क्या गया?" उस आदमी ने उस औरत की अच्छी तरह धुनाई कर दी।

सीताराम युवराज को लेकर नहर के किनारे पहुंचा। वहां एक बजरा घाट से बंधा खड़ा था। युवराज के घाट पर पहुंचते ही एक व्यक्ति शीघ्रतापूर्वक बजरे के अन्दर से बाहर निकल आया और बोल उठा, 'उदय, तुम आ गए!" इस स्वर को सुनकर उदयादित्य चौंक पड़े। यह वही चिरपरिचित, स्नेहपूर्ण मधुर स्वर था, जिसे वे बचपन से सुनते आए हैं। अभी वे विस्मित ही खड़े थे कि बसन्तराय ने आकर उन्हें छाती से लगा लिया। दोनों की आंखें डबडबा आईं। फिर उदयादित्य ने दादा साहब को प्रणाम करके कहा, "दादा साहब, आज मैं स्वतन्त्र हुआ। आज मैंने आपको प्राप्त किया, इससे बड़ा सुख और क्या हो सकता है! लेकिन यह सुख कितनी देर के लिए?"

तभी सीताराम ने आगे बढ़कर हाथ जोड़ते हुए कहा, "युवराज, बजरे में बैठ जाइए।"

उदयादित्य ने आश्चर्य-भरे स्वर में कहा, "क्या दादा साहब, आप मुझे भगाए लिए जा रहे हैं?"

बसन्तराय ने उदयादित्य का हाथ पकड़कर कहा, "हां भैया, मैं तुम्हें चुराकर लिए जा रहा हूं। यह पाषाण हृदयवालों का देश है, तुम्हें फूटी आंखों भी नहीं देख सकता। तुम मृगशावक व्याघ्रों के इस देश में रह ही कैसे सकते हो! चलो मेरे साथ, मैं तुम्हें अपने प्राणों में छिपाकर रखूंगा।"

उदयादित्य ने कुछ देर तक सोचते रहने के बाद कहा, "नहीं दादा साहब, मैं भाग नहीं सकूंगा।"

बसन्तराय ने कहा, "क्यों बेटा, क्या इस बूढ़े को तुम भूल ही गए?"

उदयादित्य ने कहा, "जाता हूं, पिताजी के पांव पकड़कर प्रार्थना करूंगा। शायद वे रायगढ़ जाने की अनुमति दे दें।"

बसन्तराय विचलित होकर बोल उठे, "नहीं भैया, वहां कदापि मत जाना! सारा प्रयत्न निष्फल होगा।"

लेकिन कुछ दूर जाने पर उन्होंने कहा, "क्या थोड़ी देर हो जाने से काम नहीं चलेगा ?"

सीताराम ने कहा, "नहीं महाराज, ज़रा-सी देर सब किए-कराए को चौपट कर देगी।"

इसपर 'जय दुर्गे' कहकर वसन्तराय महल से बाहर निकल गए।

वसन्तराय आए हैं, यह बात उदयादित्य को मालूम नहीं। विभा ने उन्हें नहीं बताया। वह जानती है कि दोनों की भेंट किसी भी तरह सम्भव नहीं, तो फिर यह बताकर उनके कष्ट को बढ़ाया ही क्यों जाए! आज सन्ध्या होते ही विभा कारागार से चली गई। उदय अंधकार में अकेले इसी बात की मीमांसा कर रहे हैं। बहुत सोचने पर भी उनकी समझ में नहीं आ रहा है कि विभा आज जल्दी क्यों चली गई।

तभी सहसा बाहर से 'आग-आग' का शब्द सुनाई दिया और चारों ओर कोलाहल मच गया। उदयादित्य की छाती धड़क उठी। उदयादित्य ने यही समझा कि समीप ही कहीं महल के किसी भाग में आग लग गई है। तभी किसीने जल्दी मे उनके कारागार का द्वार खोल दिया। एक आदमी ने अंधेरे में अन्दर प्रवेश किया। उदयादित्य चौंक उठे और उन्होंने पूछा, "कौन है ?"

उस व्यक्ति ने कहा, "मैं सीताराम हूं। आप बाहर चलिए।"

उदयादित्य ने पूछा, "क्यों ?"

सीताराम ने कहा, "युवराज, कारागार में आग लग गई है, शीघ्र बाहर निकल जाइए।"

और अपने साथ चले आने को कह, वह उन्हें ज़बर्दस्ती बाहर निकाल ले गया।

उधर आग खूब ज़ोरों के साथ भड़क उठी थी। हो-हल्ला मच रहा था कि न जाने कहां से एक औरत वहां निकल आई और जिस-तिसको जाने क्या कह-कहकर रोकने लगी। लेकिन उस शोरगुल में जब किसीने उसकी बात नहीं सुनी तो वह बहुत प्रचण्ड हो उठी। अन्त में जो आदमी सामने पड़ गया उसीको पकड़कर वह चिल्ला उठी, "नासपीटे, क्या तुम सबकी आंखें फूट गई हैं ? कल महाराज को क्या

ग्रौर इस स्त्री-हत्या का पाप तुम्हारे सिर होगा।" अपने तीक्ष्ण नखों से अपनी ही छाती क्षत-विक्षत कर बाल खोले हुए वह नहर के वर्षाकालीन जल में कूद पड़ी ग्रौर पता नहीं किस घाट जाकर लगी। सीताराम के कन्धे से खून बह रहा था। उसने चादर पानी में भिगोकर कन्धे से लपेट ली। आगे बढ़कर देखा तो उदयादित्य लगभग बेसुध-से पड़े थे। वसन्तराय दिशाहारा की भांति सूनी दृष्टि से देख रहे थे। मल्लाहों ने दोनों को उठाकर नाव में डाला ग्रौर उसी समय नाव खोल दी। सीताराम ने डरकर कहा, "यात्रा के समय यह कैसा अपशकुन!"

३०

उदयादित्य का बजरा जब नहर से होकर नदी में पहुंच गया तो सीताराम वहीं उतर पड़ा ग्रौर शहर लौट ग्राया। लौटते समय उसने युवराज से उनकी तलवार मांगकर अपने साथ ले ली।

कहने को तो उसने कह दिया था ग्रौर यह दिखावा भी किया था कि उदयादित्य के तीनों पत्र एक अनुचर के हाथ राजमहल पहुंचा दिए हैं। लेकिन वास्तव में उसने वे तीनों पत्र उस व्यक्ति से लेकर अपने पास ही रख लिए थे। शहर ग्राकर उसने केवल रानी ग्रौर विभा के पत्र ही यथास्थान पहुंचाए, प्रतापादित्य के पत्र को उसने नष्ट कर दिया।

उस रात के अग्निकांड में सीताराम का प्रमुख हाथ था। उदयादित्य के प्रति श्रद्धा रखनेवाले कुछ प्रजाजनों एवं राजमहल के अनुचरों की सहायता से उसने इस कार्य को सफलता से सम्पन्न किया। जब सीताराम लौटकर ग्राया तो ग्राग खूब जोर पर थी ग्रौर बड़ा शोर-गुल मच रहा था। इसी हड़बोंग में सीताराम के ग्रादमियों ने राजकुमार के जनशून्य कारागार में ग्राग लगा दी। जब ग्राग खूब भड़क उठी ग्रौर बन्दीगृह से लपटें निकलने लगीं तो सीताराम ने अवसर देखकर ग्रौर सबकी निगाह बचाकर उदयादित्य की तलवार, कुछ हड्डियां ग्रौर मुर्गे का एक सिर उस जलते हुए कारागार में फेंक दिया।

इधर तो यह नाटक खेला गया ग्रौर उधर ग्राग बुझा रहे प्रहरियों ने राजकुमार के बन्दीगृह की ग्रोर से एक चीत्कार सुनी। सबके सब चौंककर कह उठे, "यह क्या हुग्रा?" इतने में एक ग्रादमी ने दौड़े

उदयादित्य ने लम्वी सांस लेकर कहा, "तो कारागार में ही लौट जाता हूं।"

वसन्तराय ने उनका हाथ पकड़कर कहा, "जाओ तो सही; मैं भी देखता हूं कैसे जाते हो !"

उदयादित्य की आंखों में आसू भर आए और वे बोले, "दादा साहब, मुझ अभागे के लिए आप संकट को न्योता क्यों देते हैं ?"

वसन्तराय ने कहा, "भैया, ज़रा विभा का भी तो खयाल करो। तुम्हारे लिए वह कारावासिनी हो उठी है। क्या तू यही चाहता है कि वह इस छोटी उमर में अपने सब सुखों को तिलांजलि दे दे ?"

उदयादित्य ने शीघ्रतापूर्वक कहा, "तो चलिए दादा साहब !"

लेकिन नाव छूटने से पहले उदयादित्य ने तीन पत्र लिखकर सीताराम को देते हुए कहा, "इन्हें महल में पहुंचा देना।" पहले पत्र में उन्होंने पिता से क्षमा-याचना की। दूसरे पत्र में मां को लिखा, "मां, मैं दादा साहब के साथ जा रहा हूं। वहां सुख से रहूंगा। तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करना।" तीसरे पत्र में विभा को लिखा, "चिरायुष्मती विभा, तुम्हें और क्या लिखूं—सदा सुखी रहो; इस जन्म में ही नहीं, अनन्त जन्मों में भी, और पति के घर जाकर समस्त दुःख-कष्टों को भूल जाओ।" सीताराम ने तीनों पत्र महल में भिजवा दिए।

सब लोग नाव पर सवार होने जा रहे थे कि एक औरत ववण्डर की भांति उस ओर आती दिखाई दी। सीताराम घवराकर बोल उठा, "आ रही है वह डायन !" इतने में तो रुक्मिणी अपने पैशाचिक रौद्र रूप में वहां आ भी पहुंची। पहले उसने प्रतापादित्य के राजमहल में प्रवेश करने का प्रयत्न किया था, लेकिन प्रहरियों ने उसे मार भगाया तो इस ओर निकल आई। उदयादित्य को देखते ही प्रतिहिंसा से भरी हुई बाघिन की भांति वह उनपर झपटी, लेकिन सीताराम बीच में पड़ गया तो अमानुषिक चीत्कार के साथ उसीसे लिपट गई। मारे यन्त्रणा के सीताराम की चीख निकल गई। एक मल्लाह ने अपना पूरा ज़ोर लगाकर सीताराम को उसके हाथों से छुड़ा लिया। निष्फल क्रोध से रुक्मिणी का सर्वाङ्ग कांप उठा। वह पिशाचिनी की भांति किलकारी मारकर बोली, "व्यर्थ हो गया, सब कुछ व्यर्थ हो गया ! अब मैं मरूंगी

कोमल स्वर में बोला, "बस तुम्हारी यही बात तो अच्छी नहीं लगती। हंसी-मजाक तुम कभी समझती नही। अपनो पर भी भला इस तरह गुस्सा हुआ जाता है! लो, कुछ बोलो। वह गीत ही सुना दो।"

सीताराम तो हंसी-मजाक पर आमादा था और उधर मगला विकराल रूप धारण किए दांत किटकिटाकर बोली, "ठहर मुए, तुझे गीत सुनाती हू। तेरा खोपड़ा ही न फोड़ दू तो कहना!" सीताराम इतना सुनते ही वहा से सटक गया।

बाहर निकलकर सीताराम ने सोचा कि अब तो मंगला के द्वारा राजकुमार के भागने की बात चारों ओर फैल ही जाएगी। बडी गलती हुई कि उसी समय इस डाइन का गला नही घोंट दिया। अब यशोहर मे रुका तो कुशल नही। इसी समय चल देना चाहिए और वह रातों-रात सपरिवार रायगढ़ के लिए चल पड़ा।

काफी रात गए मूसलाधार पानी बरसने लगा तो कही जाकर आग बुझी। आग लगने और उसमें युवराज के जल मरने के समाचार सुनकर प्रतापादित्य उसी समय अपने सभाभवन मे आ बैठे। आते ही उन्होंने प्रहरियो को बुलाया। मत्री भी आ गए और एक-दो मुसाहिब भी हाजिर हो गए। राजा ने पूछा, "वह बुड्ढा कहा है?" उसी समय राजमहल का कोना-कोना ढूढा गया, लेकिन बसन्तराय का कही पता न चला। एक आदमी ने कहा, "जब आग लगी तो वे राजकुमार के पास कैदखाने मे ही थे।" दूसरे आदमी ने कहा, "राजकुमार के जल मरने का समाचार सुनते ही वे यशोहर का परित्याग कर चले गए।"

इधर तो दरबार मे यह पूछताछ हो रही थी और उधर सभाभवन के दरवाजे पर कोलाहल बढ़ता जाता था। पता चला कि एक औरत दरबार में आना चाहती है, लेकिन प्रहरी उसे आने नही दे रहे हैं। प्रतापादित्य ने हुक्म दिया, "उसे तुरन्त हाजिर किया जाए।" रुक्मिणी भीतर आई। राजा ने उससे पूछा, "तुम क्या चाहती हो?'

उसने हाथ नचाते हुए उच्च स्वर में कहा, "मैं केवल इतना चाहती हूं कि आप अपने सभी प्रहरियो को काल-कोठरियों में सड़ाकर शिकारी कुत्तों के आगे डाल दें। ये न आपसे डरते है, न आपका हुक्म मानते है।" सुनते ही सभी प्रहरी शोर मचाने लगे, तो रुक्मिणी ने डांटते

आकर कहा, "राजकुमार के कैदखाने में आग लग गई।" सुनते ही सभी प्रहरियों का रक्त पानी हो गया। उनके सरदार दयालसिंह की तो सिट्टी ही गुम हो गई। तभी एक दूसरे आदमी ने दौड़े आकर कहा, "कैदखाने से एक चीख सुनाई दी, तुमने भी जरूर सुनी होगी।" उसकी बात अभी पूरी भी नहीं होने पाई थी कि सीताराम वहां दौड़ा आया, "चलो, सब जल्दी चलो! राजकुमार के वन्दीगृह की छत बैठ गई है और उनका कुछ पता नहीं चल रहा।" सबके सब इधर की आग बुझाना छोड़कर उधर दौड़ पड़े। जाकर देखा तो छत बैठ गई थी, आग 'हू-हू' कर जल रही थी और अन्दर घुसना असम्भव हो गया था।

सीताराम ने सोचा कि वन्दीगृह में युवराज के जल मरने का समाचार फैलाकर वह कुछ दिनों के लिए निश्चिन्त हो सकेगा। सिर पर चादर लपेटकर वह प्रसन्न मन से अपने घर की ओर चल दिया। कुछ दूर जाने पर उसने सोचा कि यशोहर छोड़कर सपरिवार भाग ही जाना है तो चलते-चलते कुछ पैसों का प्रवन्ध क्यों न कर लिया जाए। मंगला तो कम्वख्त डूब ही मरी है, पैसा उसके पास बहुत है और तीनों लोकों में उसका कोई वारिस नहीं।

जब वह वहां पहुंचा तो रुक्मिणी के झोंपड़े का द्वार खुला था। प्रसन्न मन से भीतर प्रवेश कर वह चारों ओर देखने लगा, लेकिन अन्धकार में कुछ दिखाई नहीं दिया। टटोलता हुआ आगे बढ़ा तो एक सन्दूक पर जा गिरा और वहां से उठा तो दीवार से सिर टकरा गया। सीताराम की छाती धक्-धक् करने लगी। सहसा उसे एक कमरे में प्रकाश दिखाई दिया। वह उसी ओर बढ़ गया। लेकिन यह क्या! उस कमरे में तो मंगला बैठी हुई थी। पास जाकर अपनी गलती पर चौंककर बोला, "तू कहां से आ गई चुड़ैल! तेरी मौत नहीं हुई क्या?"

रुक्मिणी ने चौंककर जब सीताराम की ओर देखा तो सीताराम को अपना दम घुटता-सा प्रतीत हुआ। कुछ देर उसकी ओर देखते रहने के बाद वह बोली, "तेरा सर्वनाश किए बिना ही मैं मर जाऊंगी, क्यों? यमराज के दरवाज़े से लौट आई हूं मैं। जब तक तेरी और तेरे युवराज की चिता ठण्डी न कर लूंगी, मेरे जी को शान्ति नहीं मिलेगी।"

रुक्मिणी का स्वर सुनकर सीताराम के जी में जी आया। वह

३१

उदयादित्य भागकर रायगढ़ चले गए हैं, यह बात महारानी और विभा को महाराज से पहले ही ज्ञात हो गई थी। एक सप्ताह में महाराज को पूरे और विश्वसनीय समाचार मिल गए, परन्तु उन्होंने कुछ भी नहीं किया। जब रानी से संशय मे नही रहा गया तो वे प्रतापादित्य के पास गईं और किसी प्रकार हिम्मत करके बोली, "महाराज, आपसे एक भीख मागती हूं। इस बार मेरे उदय को माफ कर दीजिए। यदि मेरे लाल को आपने और कष्ट दिया तो मैं विष खा लूगी।"

प्रतापादित्य झुंझला उठे, "तुम तो पहले से ही रोने बैठ गईं। मैंने तो कुछ किया नही।"

महारानी ने इसके पहले ही विभा को बता दिया था और अंतःपुर में यह बात फैला भी दी थी कि विभा को भेजने के लिए उसके ससुराल से पत्र आया है। सुनते ही विभा की सारी उदासी दूर हो गई और मा से अपने ससुराल बुलाए जाने की बात सुनकर वह मा के गले से लिपट गई। पति उसे भूले नही हैं, इस विचार-मात्र से वह प्रफुल्लित हो उठी। पुत्री को प्रसन्न देखकर रानी भी प्रसन्न हुई, पर मन मे उनके घोर दुश्चिन्ता भी थी, जिसे वे किसी तरह विभा पर प्रकट नही करना चाहती थी।

जब दिन बीतते ही गए और मा ने भेजने का नाम नही लिया तो विभा को चिन्ता होने लगी। जब उन्होंने बुला भेजा है तो विलम्ब किसलिए? एक बार उन्होंने क्षमा कर दिया लेकिन बार-बार···

अन्त मे एक दिन उसने मा के गले मे लिपटकर लाड-भरे स्वर में पूछा, "मा!" यद्यपि मा सब कुछ जानती थी, फिर भी उन्होंने उसे छाती से लगाकर कहा, "क्या है, बेटी?" विभा थोड़ी देर मा की छाती मे मुह छिपाए रही, फिर बोली, "मा, तुम मुझे कब भेजोगी, मां?" कहते-कहते विभा का मुह लाल हो गया। मा ने ज़रा हसते हुए कहा, "कहा भेजने को कह रही हो बेटी?" विभा ने दुलराकर कहा, "बताओ न मा!" रानी ने कहा, "और कुछ दिन सबर करो बेटी, शीघ्र ही भेज दूगी।" कहते-कहते रानी की आखें भर आईं।

हुए कहा, "चुप रहो, कायरो ! निकम्मे कामचोर कहीं के। कल एक-एक के पांव पकड़कर कहती रही कि तुम्हारे युवराज रायगढ़ के बूढ़े राजा के साथ भागे जा रहे हैं, चलकर उन्हें रोको, तो किसीने मेरी वात सुनी थी ? महल में नौकरी करने से तुम सब लोगों को वड़ा घमण्ड हो गया है। मुए मरदूदो, तुम नमकहरामों की यही सजा है।"

राजा ने कहा, "जो कुछ हुआ है, साफ-साफ और सच-सच बतलाओ।"

रुक्मिणी बोली, "बताना क्या है, अपना सिर ! कह तो रही हूं कि तुम्हारे युवराज रात को बूढ़े राजा के साथ भाग गए।"

प्रतापादित्य ने पूछा, "अच्छा, जानती हो, आग किसने लगाई थी ?"

रुक्मिणी ने कहा, "जानती क्यों नहीं हूं। यह सब उस नासपीटे सीताराम की करतूत है। बुड्ढे वसन्तराय, नासपीटे सीताराम और तुम्हारे युवराज ने मिलकर यह षड्यन्त्र रचा।"

प्रतापादित्य ने फिर पूछा, "तुम यह सब कैसे जानती हो ?"

रुक्मिणी ने कहा, "इससे तुम्हें क्या मतलब ? मेरे साथ अपने खास आदमी भेजो, मैं स्वयं जाकर उन्हें बताए देती हूं। तुम्हारे सिपाहियों में कोई दम नहीं। सबके-सब भेड़ हैं भेड़, इनसे कुछ होने का नहीं।"

प्रतापादित्य ने अपने विश्वस्त अनुचरों को रुक्मिणी के साथ जाने का आदेश दिया और प्रहरियों को दण्ड का हुक्म सुनाया गया।

उसी दिन संध्या के समय एक मल्लाह ने आकर प्रतापादित्य को युवराज के भागने का समाचार सुनाया। क्रमशः अन्यान्य लोगों के मुंह से भी यही बात सुनी गई। रुक्मिणी के साथ जो लोग गए थे उन्होंने एक सप्ताह के बाद लौट आकर कहा, "हम युवराज को रायगढ़ में देखकर आ रहे हैं।"

राजा ने पूछा, "वह औरत कहां रह गई ?"

उन्होंने कहा, "वह लौटकर नहीं आई, वहीं रह गई।"

प्रतापादित्य ने मुख्तियारखां नाम के अपने एक पठान सेनापति को बुलाया और उसे कोई गुप्त आदेश दिया। वह सलाम करके चला गया।

उदयादित्य कुछ देर चुप रहे, फिर बोले, "दादा साहब, यदि हम बिछुड़ गए तो क्या होगा ?"

बसन्तराय ने उदयादित्य को गले लगाकर कहा, "क्यों भाई, बिछुड़ेंगे क्यों ?. तुम मुझे छोड़कर तो नहीं चले जाओगे ? क्या मुझ बूढ़े को अकेला छोड़ सच ही भाग जाने का विचार है ?"

उदयादित्य की आंखें डबडबा आईं। लम्बी सांस लेकर बोले, "मैं यहां रहा तो आपपर विपद आ सकती है, दादा साहब !"

बसन्तराय ने हंसकर कहा, "अब इस उमर में विपद से क्या डरना ! मौत से बड़ी तो कोई आफत होती नहीं, और उसका मुझे कोई भय नहीं। तीर पर पहुंचने के बाद नाव डूब भी जाए तो क्या चिन्ता !"

उदयादित्य ने आज का सारा दिन बसन्तराय के साथ ही बिताया। सारा दिन पानी बरसता रहा। शाम को वर्षा थमी तो उदयादित्य उठते हुए बोले, "ज़रा घूम आऊं।" बसन्तराय ने कहा, "नहीं, आज मत जाओ।" उदयादित्य ने पूछा, "क्यों दादा साहब ?"

बसन्तराय ने उदय को कसकर छाती से लगा लिया और बोले, "आज तुम कहीं मत जाओ, मेरे पास ही रहो।"

उदयादित्य यह कहते हुए बाहर चले गए, "मैं अधिक दूर नहीं जाऊंगा, दादा साहब, अभी लौट आता हूं।"

राजप्रासाद से बाहर निकलकर युवराज एक मैदान में अकेले घूमने लगे। उनके मन में अनेक प्रकार के विचार तरंगित होने लगे। फिर विभा याद आई। मैंने उसके सुख को भी ग्रहण लगा दिया। उन्होंने मन ही मन विभा को अनेक आशीर्वाद दिए और उसके लिए अनेक शुभकामनाएं कीं।

समीप ही एक निकुंज था। फिर वे उसमें बैठे। आज उनके यहां से भागने की बात थी। अंधेरे निकुंज में बैठे वे सोच रहे थे कि जब मैं भाग जाऊंगा तो दादा साहब पर क्या गुज़रेगी ? तभी सहसा एक स्त्री का कर्कश स्वर उनके कानों से टकराया, "अरे ओ, देखो, यह रहे, तुम्हारे युवराज यह रहे !"

साथ ही मशालें लिए हुए दो सैनिक उनके अगल-बगल आ खड़े हुए। देखते-देखते और भी बहुत-से सैनिकों ने उन्हें घेर लिया। अन्त में

३२

बहुत दिनों के बाद उदयादित्य रायगढ़ आए, लेकिन उन्हें पहले जैसा आनन्द नहीं मिला। मन में चिन्ता बनी रहने से उन्हें कुछ भी अच्छा न लगता। सोचते-सोचते परेशान हो जाते तो वे वसन्तराय से कहते, "दादा साहब, मैं यशोहर ही क्यों न लौट जाऊं?" वसन्तराय विषण्ण होकर कहते, "भैया, तुम्हें यहां ऐसा कौन-सा दुःख है?"

धीरे-धीरे उदयादित्य का मन बहलने लगा। रायगढ़ के मुक्त वातावरण और दादा साहब के स्नेहपूर्ण हृदय ने उनकी दुश्चिन्ताओं को बहुत कम कर दिया। जब प्रजाजनों को मालूम हुआ कि युवराज आए हैं, तो निकट-दूर सब स्थानों के लोग उनसे मिलने और उनके दर्शनार्थ आने लगे।

इस प्रकार दिन हंसी-खुशी में कटने लगे थे और राजकुमार सोचते, शायद पिता ने माफ कर दिया, अन्यथा इतने दिन चुप क्यों रहते? लेकिन इस प्रकार अपने मन को अधिक समय तक भुलावा न दे सके। दादा साहब के लिए उनके मन में एक प्रकार का भय घर कर गया था, जो दिनोंदिन गहरा ही होता जाता था। उनकी समझ में यशोहर लौटकर ही इस भय का निराकरण हो सकता था। परन्तु दादा साहब के सामने लौटने की बात करना ही व्यर्थ था। इसलिए वे सोचने लगे कि किसी दिन छिपकर चुपचाप यहां से चला जाऊंगा। लेकिन वहां के कारागार की याद आते ही उनके मन-प्राण तक कांप उठते थे। इसलिए 'आज ही भागने' की बात तो वे तय कर ही नहीं पाते थे, परन्तु 'किसी दिन भागने' का उन्होंने निश्चय कर लिया था।

सवेरे जब वसन्तराय से भेंट हुई तो उन्होंने छाती से लगाकर कहा, "भैया, कल रात मैंने बड़ा बुरा स्वप्न देखा। शायद कोई बुरी घटना होनेवाली है। कहीं ऐसा न हो कि सदा के लिए साथ छूट जाए।"

उदयादित्य ने उन्हें दिलासा देते हुए कहा, "नहीं, दादा साहब, सदा के लिए साथ क्यों छूटने लगा!"

वसन्तराय ने कुछ चिन्तित होकर कहा, "हो क्यों नहीं सकता? बूढ़ा हुआ, और जीऊंगा कै दिन?"

उदयादित्य कुछ देर चुप रहे, फिर बोले, "दादा साहब, यदि हम पुन: बिछुड़ गए तो क्या होगा ?"

बसन्तराय ने उदयादित्य को गले लगाकर कहा, "क्यों भाई, बिछुड़ेंगे क्यों ? तुम मुझे छोड़कर तो नहीं चले जाओगे ? क्या मुझ बूढ़े को अकेला छोड़ सच ही भाग जाने का विचार है ?"

उदयादित्य की आंखें डबडबा आई । लम्बी सांस लेकर बोले, "मैं यहां रहा तो आपपर विपद आ सकती है, दादा साहब !"

बसन्तराय ने हंसकर कहा, "अब इस उमर में विपद से क्या डरना ! मौत से बड़ी तो कोई आफत होती नहीं; और उसका मुझे कोई भय नहीं । तीर पर पहुचने के बाद नाव डूब भी जाए तो क्या चिन्ता !"

उदयादित्य ने आज का सारा दिन बसन्तराय के साथ ही बिताया । सारा दिन पानी बरसता रहा । शाम को वर्षा थमी तो उदयादित्य उठते हुए बोले, "जरा घूम आऊं ।" बसन्तराय ने कहा, "नहीं, आज मत जाओ ।" उदयादित्य ने पूछा, "क्यों दादा साहब ?"

बसन्तराय ने उदय को कसकर छाती से लगा लिया और बोले, "आज तुम कहीं मत जाओ, मेरे पास ही रहो ।"

उदयादित्य यह कहते हुए बाहर चले गए, "मैं अधिक दूर नहीं जाऊंगा, दादा साहब, अभी लौट आता हूं ।"

राजप्रासाद से बाहर निकलकर युवराज एक मैदान में अकेले घूमने लगे । उनके मन में अनेक प्रकार के विचार तरंगित होने लगे । फिर विभा याद आई । मैंने उसके सुख को भी ग्रहण लगा दिया । उन्होंने मन ही मन विभा को अनेक आशीर्वाद दिए और उसके लिए अनेक शुभकामनाएं कीं ।

समीप ही एक निकुंज था । फिर वे उसमें बैठे । आज उनके यहां से भागने की बात थी । अंधेरे निकुंज में बैठे वे सोच रहे थे कि जब मैं भाग जाऊंगा तो दादा साहब पर क्या गुजरेगी ? तभी सहसा एक स्त्री का कर्कश स्वर उनके कानों से टकराया, "अरे ओ, देखो, यह रहे, तुम्हारे युवराज यह रहे !"

साथ ही मशालें लिए हुए दो सैनिक उनके अगल-बगल आ खड़े हुए । देखते-देखते और भी बहुत-से सैनिकों ने उन्हें घेर लिया । अन्त में

वह स्त्री उनके सामने आ खड़ी हुई और बोली, "मुझे नहीं पहचाना ? एक बार मेरी ओर देखो, मेरी ओर देखो तो !"

सैनिकों ने उसका यह व्यवहार देखा तो डपटकर बोले, "दूर हो चुड़ैल, यहां से !"

उसने उनकी बात सुनी-अनसुनी करके कहा, "यह सब किसने किया ? मैंने ! इन सब सैनिकों को यहां कौन लाया ? मैं ! मैंने तुम्हारे लिए यह सब किया और तुम···"

लेकिन युवराज मारे घृणा के रुक्मिणी की ओर से मुंह फेरकर खड़े हो गए। मुख्तियारखां ने सामने आकर युवराज को सलाम किया और खड़ा हो गया। युवराज ने विस्मित होकर कहा, "मुख्तियारखां, तुम ! बोलो, क्या खबर है ?"

मुख्तियारख़ां ने विनम्रतापूर्वक कहा, "हुजूर, हम महाराज साहब बहादुर का हुक्म लेकर आए हैं।"

युवराज ने पूछा, "कौन-सा हुक्म ?" जवाब में मुख्तियारखां ने प्रतापादित्य के हाथ का लिखा आदेश-पत्र उनके सामने कर दिया। उदयादित्य ने उसे पढ़कर कहा, "इसके लिए इतने आदमियों की ज़रूरत ? मुझे एक पत्र लिख देते तो मैं योंही चला आता। अब देर करने का कोई ही अर्थ नहीं। चलो, अभी यशोहर लौट चलें।"

मुख्तियारखां ने हाथ जोड़कर कहा, "नहीं जनाब, अभी तो नहीं चल सकते।"

युवराज डर गए और बोले, "क्यों ?"

मुख्तियारखां ने कहा, "इसलिए कि एक हुक्म और है और वह यह कि रायगढ़ के महाराजा साहब को मौत की सज़ा दी गई है और उसकी तामील करने का भार मुझे सौंपा गया है।"

युवराज ने सेनापति का हाथ पकड़ लिया और बोले, "तुम जरूर गलत समझे हो मुख्तियारखां ! महाराज ने कहा होगा कि जब उदयादित्य न मिले तो वसन्तराय को पकड़ लाना। लेकिन जब मैं आप ही पकड़ गया हूं तो फिर रह ही क्या जाता है ! मुझे पकड़कर, वन्दी बनाकर अभी ले चलो, ज़रा भी देर मत करो।"

मुख्तियारखां ने कहा, "नहीं साहब, मैंने बिलकुल गलत नहीं

समझा । खुद महाराजा साहब ने साफ-साफ हुक्म फरमाया है।"

युवराज ने कहा, "नहीं, तुमने जरूर गलत समझा है। महाराज का यह मतलब कभी नहीं हो सकता । अच्छा, एक काम करो । मुझे यशोहर ले चलो । मैं महाराज से पुछवाए देता हू । यदि दुबारा वे ऐसा ही आदेश प्रदान करें तो तुम अवश्य उसका पालन करना ।"

मुख्तियारखा हाथ जोडकर बोला, "जी नहीं, माफ कीजिए, मैं ऐसा हर्गिज नहीं कर सकता ।"

राजकुमार ने कहा, "मुख्तियारखा, जरा यह भी तो सोचो कि आज नहीं तो कल मैं सिंहासन पर बैठूगा । मेरी बात मान लो ।"

मुख्तियारखा ने कोई जवाब नहीं दिया । वह चुप खड़ा रहा ।

राजकुमार का मुह उतर गया, उनके माथे पर पसीने की बूदें झलक आई । मुख्तियारखा का हाथ पकडकर बोले, "निरपराध पूजनीय वृद्ध को मारकर तुम्हें नरक में भी ठौर नहीं मिलेगा । यह पाप है।"

मुख्तियारखा ने कहा, "मालिक का हुक्म बजाना पाप नहीं ।"

अब उदयादित्य को तैश आ गया और वे उग्र होकर बोले, "अच्छी बात है, तो मुझे छोड दो और रायगढ के किले तक जाने दो । तुम अपनी सेना लेकर वहा आओ । मैं तुमसे युद्ध करूगा । लड़ाई में जीतकर ही तुम इस आदेश का पालन कर सकोगे ।"

मुख्तियारखा ने इसका कोई जवाब नहीं दिया । लेकिन उसके इशारे पर बहुत-से सैनिकों ने राजकुमार को चारों ओर से घेर लिया । सैनिकों ने तत्काल उदयादित्य की मुश्क कस दी ।

उस समय वसन्तराय साय पूजा कर रहे थे । राजमहल के देव-मन्दिर में शख और घण्टे-घडियाल बज रहे थे । वसन्तराय अभी पूजा कर ही रहे थे कि मुख्तियारखा पूजाघर में आता दिखाई दिया । वसन्त-राय ने उसे रोकते हुए कहा, "खा साहब, पूजाघर में न आइए । मैं पूजा करके वहीं आता हू ।"

मुख्तियारखा लौटकर पूजाघर के दरवाजे पर खडा हो गया । वसन्तराय ने पूजा समाप्त की और जल्दी से बाहर निकल आए । मुख्तियारखा की पीठ पर हाथ रखकर उन्होंने पूछा, "खा साहब, सब कुशल तो है न ?"

"जी हां, महाराज। मैं महाराज के एक हुक्म की तामील करने के लिए हाजिर हुआ हूं।" मुख्तियारखां ने वह आदेश-पत्र वसन्तराय के हाथ में थमा दिया। वसन्तराय पढ़ने लगे।

पढ़कर वसन्तराय ने पूछा, "क्या यह प्रताप ने लिखा है?"

"जी हां।"

"क्या प्रताप ने खुद अपने हाथों से लिखा है?"

"जी हां।"

तब वसन्तराय रो उठे और बोले, "खां साहब, मैंने प्रताप को पाल-पोसकर बड़ा किया है। जब वह छोटा-सा था, मैं उसे गोद में उठाए फिरता था। वह मुझे एक क्षण के लिए भी छोड़ता नहीं था। जब वह बड़ा हो गया तो मैंने उसकी शादी की, उसे सिंहासन पर बिठाया, उसके बच्चों को गोद खिलाया—आज उस प्रताप ने अपने हाथों यह आदेश लिखा है, खां साहब!" वसन्तराय ने पूछा, "उदय कहां है?"

मुख्तियारखां ने जवाब दिया, "वे कैद हो गए। उन्हें फैसले के लिए महाराज के पास भेज दिया गया।"

वसन्तराय बोल उठे, "उदय कैद हो गए! क्या मैं उनसे एक बार मिल सकता हूं?"

"जी नहीं, हुक्म नहीं है।"

वसन्तराय ने मुख्तियारखां का हाथ पकड़कर कहा, "मुझे एक बार, सिर्फ एक बार मिला नहीं सकते, खां साहब?"

मुख्तियारखां ने कहा, "मजबूरी है जनाब! मैं तो केवल हुक्म बजानेवाला नौकर हूं।"

वसन्तराय ने लम्बी सांस लेकर कहा, "अच्छी बात है, खां साहब,! आइए, आदेश का पालन कीजिए।"

मुख्तियारखां ने सलाम करते हुए कहा, "हुजूर, मुझे माफ फरमाएं, मैं तो मालिक का हुक्म बजा रहा हूं। मेरा कोई गुनाह नहीं।"

वसन्तराय ने कहा, "जी नहीं, आपका कोई दोष नहीं। प्रताप को मैं आशीर्वाद दिए जाता हूं। उससे कह दीजिएगा कि मरते समय भी मेरे मन में उसके प्रति कोई रोष नहीं था। उदय का भार मैं अब आपको ही सौंपता हूं। वह निरपराध है। उसे और कष्ट न दिया जाए।" यह

कहकर बसन्तराय अपने इष्ट देवता की मूर्ति के आगे आंखें मूंदकर बैठ गए और माला जपते हुए बोले, "आइए खां साहब, अपना काम पूरा कीजिए।" मुख्तियारखां ने पुकारा, "अब्दुल !"

अब्दुल हाथ में नंगी तलवार लिए आया। मुख्तियारखां मुंह फेरकर चला गया। थोड़ी देर बाद अब्दुल रक्तरंजित तलवार लिए पूजाघर से बाहर निकला तो अन्दर चारों ओर खून बह रहा था।

३३

उदयादित्य को बन्दी-रूप में प्रतापादित्य के सामने पेश किया गया। प्रतापादित्य उन्हें अन्तःपुर के कक्ष में ले गए और भीतर से द्वार बन्द कर लिया। अपने को पिता के सामने पाकर उदयादित्य सिहर उठे। अनिवार्य घृणा से उनकी मांसपेशियां मानो आकुंचित हो उठीं। वे पिता के मुंह की ओर देख न सके।

प्रतापादित्य ने गम्भीर हो कहा, "तुम्हें कौन-सा दण्ड दिया जाए?"

उदयादित्य ने जवाब दिया, "जो आप उपयुक्त समझें।"

प्रतापादित्य ने कहा, "तुम हमारे इस राज्य के योग्य नहीं।"

"जी हां, महाराज! मैं सचमुच अयोग्य हूं। मुझे आपका यह राज्य नहीं चाहिए। मैं यही भीख मांगता हूं कि आप मुझे उत्तराधिकार से वंचित कर दें।"

प्रतापादित्य ने कहा, "यह कैसे जाना जाए कि तुम जो कह रहे हो वह सत्य है?"

उदयादित्य ने कहा, "दुर्बलता लेकर जन्मा अवश्य हूं, लेकिन अपने स्वार्थ के लिए आज तक कभी मिथ्या भाषण नहीं किया है। यदि आपको विश्वास न हो तो मैं मां काली के चरणों का स्पर्श कर शपथ लूंगा कि आपके राज्य की सुई की नोक के बराबर भूमि भी मुझे कभी नहीं चाहिए। समरादित्य ही आपका उत्तराधिकारी होगा।"

प्रतापादित्य ने सन्तुष्ट होकर कहा, "तो तुम क्या चाहते हो?"

उदयादित्य ने कहा, "महाराज, मैं कुछ नहीं चाहता। केवल मुझे पिंजरबद्ध पशु की भांति कारागृह में न रखा जाए। महाराज, मुझे त्याग दें। मैं आज ही काशी चला जाऊंगा। एक भिक्षा और है, मुझे

कुछ धन दीजिए। मैं काशी में दादा साहब के नाम पर एक अतिथि-शाला और एक मन्दिर बनवाना चाहता हूं।"

प्रतापादित्य ने कहा, "अच्छा, तुम्हारी सभी प्रार्थनाएं स्वीकार की जाती हैं।"

उसी दिन उदयादित्य ने मन्दिर में जाकर प्रतापादित्य के सम्मुख शपथ ग्रहण की। महारानी ने जब सुना कि उदय काशी चले जा रहे हैं तो उन्होंने आकर कहा, "बेटे, मुझे भी अपने साथ काशी ले चल।"

उदयादित्य ने कहा, "सो क्यों मां? तुम्हारा समरादित्य यहां है, तुम्हारा सारा संसार यहीं पर है। यदि तुम चली जाओगी तो यशोहर की राजलक्ष्मी ही विदा हो जाएगी।"

रानी ने रोकर कहा, "बेटा, यदि इस उम्र में तू संसार छोड़कर चला गया तो मैं किस मुंह से इस संसार में रहूंगी? राजसुख छोड़कर तू संन्यासी हुआ जा रहा है; वहां तेरी देखभाल कौन करेगा? तेरे पिता तो वज्रहृदय हैं, लेकिन क्या मैं भी पाषाणी हो जाऊं?"

रानी को अपनी सब सन्तानों में उदयादित्य ही सर्वाधिक प्रिय थे। उनके वियोग की कल्पना कर वे फूट-फूटकर रोने लगीं। उदयादित्य ने मां का हाथ पकड़कर सजल नेत्रों से कहा, "मां, तुम तो जानती ही हो कि यहां रहने पर मेरे लिए पद-पद पर बाधाएं और आशंकाएं होंगी। तुम निश्चिन्त रहो मां, विश्वेश्वर के चरणों में मैं सर्वथा निरापद और निर्भय रहूंगा।"

फिर उदयादित्य ने विभा के पास जाकर कहा, "विभा, मेरी बहिनी, काशी जाने से पहले मैं तुम्हें सुखी करता जाऊंगा। मैं अपने साथ तुम्हें ससुराल ले चलूंगा। मेरी यही एकमात्र साध है।"

विभा ने पूछा, "दादा साहब कैसे हैं?"

"बहुत अच्छे हैं।" कहते हुए उदयादित्य वहां से शीघ्रतापूर्वक चले गए।

३४

उदयादित्य और विभा के जाने की तैयारियां होने लगीं। विभा मां के गले लगकर रोने लगी। अन्तःपुर में जो भी था, ससुराल जाती

हुई विभा को सदुपदेश देने लगा।

रानी ने उदयादित्य को बुलाकर कहा, "बेटा, विभा को ले तो जा रहे हो, लेकिन कहीं उसका अपमान हुआ तो…?"

उदयादित्य ने चौंककर कहा, "क्यों मां, अपमान क्यों होगा ?"

रानी ने कहा, "कहीं विभा पर नाराज ही हो जाए ?"

उदयादित्य ने कहा, "नहीं मां, विभा जैसी भली लड़की पर भला कौन नाराज हो सकता है !"

रानी ने रोकर कहा, "बेटा, सावधानी से ले जाना। यदि वहां अनादर हुआ तो मेरी बेटी बचेगी नहीं।"

उदयादित्य के मन में आशंका जाग उठी। वह विभा से स्नेह करते हैं, इसका कोई दुष्परिणाम न हो।

शोक, विपद और अत्याचार की रंगभूमि पीछे छूट गई। जीवन की कारा पीछे रह गई। उदयादित्य ने मन ही मन कहा, 'इस घर में अब जीते जी लौटकर आना नहीं है।' एक बार उन्होंने मुड़कर पीछे देखा। रक्तपिपासु, कठोरहृदय राजमहल आकाश में सिर उठाए दैत्य की भांति खड़ा था। षड्यन्त्र, स्वेच्छाचारिता, रक्त-लालसा, दुर्बलों का उत्पीड़न, असहायों के आंसू, सब कुछ पड़ा रह गया। सामने अनन्त स्वाधीनता, प्रकृति का निष्कलंक सौन्दर्य और हृदय के स्वाभाविक स्नेह-प्रेम ने उन्हें आलिंगनबद्ध करने के लिए हाथ बढ़ा दिए। उस समय सवेरा हो रहा था।

नाव छोड़ दी गई। मल्लाहों का गीत और जल का कलकल निनाद सुनते हुए दोनों भाई-बहिन अपनी यात्रा पर चल पड़े। विभा के प्रशांत हृदय में आनन्द का उषा-लोक विराज रहा था। उसके नेत्र और मुंह अरुण आभा से दीप्तिमान हो रहे थे। वह बहुत दिनों के बाद किसी दुःस्वप्न को देखकर जाग उठी है और प्रकृति का मुख देखकर आश्वस्त हो गई है।

रामचन्द्रराय के राज्य में नौका ने प्रवेश किया। चारों ओर की शोभा देखकर विभा का मन-मयूर नाच उठा।

राजधानी के निकटवर्ती गांव में पहुंचकर उदयादित्य ने ना से लगवा दी। उन्होंने सोचा, 'अपने आगमन की सूचना भिज

और वे लोग आकर आदर-मान से लिवा ले जाएंगे।' जब नौका घाट से लगी तो शाम हो गई थी। उदयादित्य ने सोचा, कल सवेरे सन्देशा भेज देंगे। परन्तु विभा अधीर हो रही थी, वह चाहती थी कि सन्देशा आज ही भेजा जाए।

३५

आज सभी लोग आनन्द-उत्सव में व्यस्त हैं। चारों ओर बाजे बज रहे हैं। विभा का मन तो अधीर आनन्द में योंही उमंगित हो रहा था, आनन्द-उत्सव और बाजे-गाजों का शोर सुनकर वह और भी उल्लसित हो उठी। होंठों पर बार-बार मुस्कराहट छा जाती है, पर कहीं भैया को उसकी यह आन्तरिक खुशी मालूम न हो जाए, इस भय से उमगती हंसी को मुंह मोड़कर रोक लेती है। उदयादित्य इस आनन्द-उत्सव के कारण का पता लगाने के लिए गांव में चले गए।

थोड़ी देर बाद एक आदमी ने किनारे पर से पूछा, "किसकी नाव है यह ?"

नाव में यशोहर राजमहल के जो नौकर-चाकर थे वे बोल उठे, "कौन राममोहन ! आओ, आओ, ऊपर आओ।"

राममोहन शीघ्रतापूर्वक नाव में चढ़ गया। विभा ने उसे देखा तो हर्षोत्फुल्ल होकर पुकार उठी, "राममोहन !"

राममोहन बोला, "मां !"

वह विभा के उस सरल, आनन्दपूर्ण, हास्यमण्डित चेहरे की ओर देखता रहा और तब उदास होकर बोला, "मां, आप आई हैं !"

विभा ने कहा, "हां, मोहन ! महाराज को क्या इतनी जल्दी समाचार मिल गया कि तुझे लेने को भेज दिया ?"

राममोहन ने कहा, "नहीं मांजी, इतनी जल्दबाज़ी मत करो। आज रहने दो, कल देखा जाएगा।"

राममोहन के चेहरे का भाव देखकर विभा की सारी खुशी गायब हो गई। वह बोली, "क्यों मोहन, आज क्यों नहीं ?"

राममोहन ने कहा, "आज शाम हो गई, कैसे होगा ?"

विभा डर गई और बोली, "सच-सच बता मोहन, क्या बात है ?"

राममोहन से रहा नहीं गया। बात छिपाना उसके बस का है भी नहीं। वहीं बैठ गया और आंसू-भरी आंखों से बोला, "मांजी, आज आपके राज्य में आपके लिए जगह नहीं रही। आज महाराज दूसरा विवाह कर रहे हैं।" सुनते ही विभा का मुंह फक् से रह गया। उसके हाथ-पांव ठण्डे पड़ गए। राममोहन ने कहा, "माजी, जब आपका यह अधम बेटा बुलाने गया था तब आप क्यों नहीं आईं? उस समय आपने निठुर-पाषाणी बनकर मुझे क्यों लौटा दिया था मां? महाराज के आगे अब किस मुंह से जाकर आपके आने की बात कहूं?"

विभा की आंखों के आगे अंधेरा छा गया, उसका सिर घूमने लगा। राममोहन जल्दी में पानी ले आया और उसके मुंह तथा चेहरे पर छींटे देने लगा। थोड़ी देर में विभा को होश आया। वह उठकर बैठ गई। एक ही आघात से उसका समस्त संसार छिन्न-भिन्न हो गया। स्वामी के राज्य में आकर, राजधानी के समीप पहुंचकर, राजपुरी के द्वार पर पहुंचकर तृषार्त-हृदय विभा की समस्त आशाएं मरीचिका की भांति विलीन हो गईं। विभा ने व्याकुल होकर कहा, "लेकिन उन्होंने तो मुझे चिट्ठी लिखकर बुलाया था। क्या मेरे आने में बहुत देर हो गई?"

मोहन ने कहा, "देर तो हो ही गई है।"

विभा ने अधीर होकर कहा, "क्या एक बार और क्षमा नहीं करेंगे?"

मोहन ने सिर हिलाकर कहा, "अब क्षमा कैसी!"

विभा ने कहा, "मोहन, मैं केवल एक बार उनके दर्शन करना चाहती हूं।" कहते-कहते वह रो उठी। राममोहन ने अपने आंसू पोंछते हुए कहा, "आज रहने दो माजी!"

विभा ने कहा, "नहीं मोहन, मैं आज ही उन्हें देखने के लिए जाऊंगी।"

राममोहन ने कहा, "युवराज भैया को गांव से लौट तो आने दो।" विभा ने कहा, "नहीं मोहन, मैं अभी ही जाऊंगी।"

वह डरी कि उदयादित्य कहीं अपमान के खयाल से उसे जाने ही न दें।

राममोहन ने कहा, "अच्छा तो एक पालकी ले आऊं।"

विभा ने कहा "पालकी क्या होगी ? क्या मैं रानी हूं जो पालकी में चढ़कर जाऊंगी ? मैं तो एक सामान्य प्रजाजन की भांति, एक भिखारिन की भांति जाऊंगी। मुझे पालकी से क्या मतलब ?"

राममोहन ने कहा, "जीते-जी मुझसे यह देखा नहीं जाएगा।"

विभा ने कातर होकर कहा, "मोहन, तेरे पांवों पड़ती हूं, बाधा मत दे, पहले ही बहुत देर हो गई है।"

राममोहन ने व्यथित होकर कहा, "जैसी तुम्हारी आज्ञा।"

विभा सामान्य नारी के वेश में नौका से उतरी तो नौकर-चाकरों ने दौड़े आकर कहा, "बिटिया रानी, इस भेष में कहां जा रही हो ?"

राममोहन ने कहा, "यह तो मांजी का अपना राज्य है, जहां चाहें और जिस भेष में चाहें जा सकती हैं।" फिर भी नौकर न माने तो राममोहन ने डांट-फटकारकर उन्हें भगा दिया।

३६

चारों ओर लोगों की भीड़। पहले होता तो विभा मारे संकोच के गड़ जाती, लेकिन आज जैसे वह कुछ देख ही नहीं पा रही है। जो कुछ देखती है वह सब उसे मिथ्या प्रतीत होता है। आंखें भीड़ को देखती हैं, कान शोर-गुल सुनते हैं, लेकिन जैसे इस सबका उसके निकट कोई अर्थ ही नहीं।

भीड़ से निकलकर जब वह राजमहल के द्वार पर पहुंची और एक प्रहरी ने हाथ पकड़कर उसे अन्दर जाने से रोक दिया, तब विभा वाह्य जगत् में आ पड़ी और अपने चारों ओर देखकर लज्जा से गड़-सी गई। उसका घूंघट खुल गया था। उसने शीघ्रता से पल्ला माथे पर खींच लिया। राममोहन आगे-आगे जा रहा था। उसने आंखें निकालकर द्वारपाल को घुड़का। थोड़ी ही दूर पर फ़र्नाण्डिज़ खड़ा था। उसने आकर द्वारपाल को फटकार दिया। विभा महल के भीतर चली गई।

राजकक्ष में केवल राजा और रमाई भांड़ बैठे थे। अन्दर प्रवेश कर विभा राजा के मुंह की ओर देखती हुई उनके पांवों में पड़ गई। राजा चंचल होकर उठ खड़े हुए और पूछने लगे, "भिखारिन, तुम कौन हो ? क्या भीख मांगने आई हो ?"

विभा ने सिर झुकाकर सजलनयन होकर कहा, "नहीं महाराज, मैं तो अपना सर्वस्व दान करने आई हूं। आपको पराये हाथों सौंपकर विदा लेने आई हूं।"

राममोहन से रहा नहीं गया। आगे बढ़कर बोला,-"महाराज, ये आपकी महारानी हैं—यशोहर की राजकुमारी।"

सहसा रामचन्द्रराय चौंक उठे। उनके मन-प्राण झंकृत होने लगे। लेकिन तभी रमाई भाड़ हंसा और राजा की ओर कटाक्षपात कर कठोर स्वर में बोला, "क्यों, क्या अब अपने भैया से मन भर गया?"

रामचन्द्रराय के मन में करुणा का आभास उदित हो रहा था, किन्तु फिर भी वे आदत के अनुसार रमाई भाड़ के व्यंग्य पर निष्ठुरता-पूर्वक हंस दिए। उन्होंने सोचा कि अब विभा के प्रति ममता दिखाई तो बाद में खिल्ली उड़ाई जाएगी।

विभा के सिर पर मानो एकसाथ हज़ारों वज्र टूट पड़े। वह मारे लज्जा के मृतप्राय हो गई। आंखें मूंदकर मन ही मन मनाने लगी, 'मां वसुन्धरा, तुम फट जाओ और मुझे अपनी शरण में ले लो!' उसने व्यथित होकर चारों ओर देखा। उसकी असहाय दृष्टि सहायता के लिए वहां खड़े राममोहन के मुंह की ओर उठ गई।

राममोहन झपटकर आगे आया और रमाई भाड़ की गर्दन पकड़कर उसने उसे घर से बाहर धकेल दिया।

राजा ने क्रुद्ध होकर कहा, "राममोहन, तू मेरे सामने बेअदबी करता है?"

राममोहन कांपता हुआ बोला, "महाराज, मैंने बेअदबी की! आपकी महारानी को, हमारी महारानी को जो अपमानित करे, उस हरामज़ादे का सिर मुंडा, कालिख पोत, गधे पर बिठाकर शहर में निकाल नहीं दिया तो मेरा नाम राममोहन नहीं।"

राजा राममोहन पर गरज पड़े, "कौन मेरी महारानी? मैं इसे जानता ही नहीं।"

विभा का चेहरा पीला पड़ गया। उसने आंचल में मुंह छिपा लिया। उसका सारा शरीर थर-थर कांपने लगा। वह मूर्च्छित होकर ज़मीन पर गिर पड़ी। तब राममोहन ने हाथ जोड़कर राजा से कहा,

"महाराज, चार पीढ़ियों से आपके वंश की चाकरी बजा रहा हूं। बचपन में आपको गोद खिलाया है। आज आपने मेरी महारानी का अपमान किया, अपनी राजलक्ष्मी को दूर कर दिया। अब मैं आपका नौकर नहीं रह सकता। सदा के लिए नौकरी छोड़कर जा रहा हूं। अपनी महारानी की सेवा करूंगा। भीख मांगकर पेट भर लूंगा, लेकिन राजमहल की छाया के पास भी नहीं फटकूंगा।"

यह कहकर उसने राजा को प्रणाम किया और विभा से बोला, "चलो मां, चलो। यहां से शीघ्र चली चलो। अब एक क्षण भी यहां मत रुको।"

और वह विभा को उठाकर चल दिया। द्वार पर बहुत-सी पालकियां खड़ी थीं, उनमें से एक में संज्ञा-शून्य, अवसन्न विभा को लिटाकर वह उसे नाव पर ले आया।

विभा उदयादित्य के साथ काशी चली गई। वहीं दान-धर्म, देश-सेवा और अपने भैया की सेवा-टहल में अपना जीवन बिताने लगी। राममोहन जितने दिन जिया, उन्हींके पास रहा। सीताराम भी सपरिवार काशी पहुंच गया और उदयादित्य के साथ रहने लगा।

चन्द्रद्वीप में जिस हाट के आगे विभा की नौका लगी थी, अब तक उसका नाम 'बहूरानी की हाट' चला आता है।

○ ○ ○